काव्याङ्ग त्रिवेणी

लेखकः—
सिद्धगोपाल मिश्र,
विशारद "सुधाकर"

॥ श्रीहरिः ॥

काव्याङ्ग त्रिवेणी

पिंगल, अलंकार तथा रस की सरल
तथा संक्षिप्त व्याख्या ।

रचयिता—

श्रीयुत सिद्धगोपाल जी मिश्र

विशारद "सुधाकर"

प्रकाशक—

बन्शीधर अग्रवाल

बुकसेलर एण्ड स्टेशनर—उरई ।

—o—

प्रथमवार	सन	मूल्य
१०००	१९३४ ई०	।।)

प्रकाशक —

लाला वंशीधर अग्रवाल,

बुकसेलर एन्ड स्टेशनर,

उरई ।

प्रिन्टर —

श्री लक्ष्मीनारायण मीतल,

विकास प्रेस,

उरई ।

विषय-सूची।

॥ श्रीहरिः ॥

दो शब्द

हिन्दी काव्य के रसास्वादन के लिये काव्याङ्ग का सम्यक् ज्ञान परमावश्यक है। यद्यपि प्रत्येक अङ्ग के उत्तमोत्तम ग्रन्थ इस समय विद्यमान हैं, किन्तु अद्यावधि ऐसा एक भी ग्रन्थ दृष्टिगोचर नहीं हुआ, जिसमें काव्य के तीनों अङ्ग पिङ्गल, अलङ्कार तथा रस एकत्र हों। साथ ही में अन्य सब ग्रन्थ इतने बहुमूल्य हैं कि होनहार दीन बालक धनाभाव के कारण उनके खरीदने में असमर्थ हो उपयुक्त ज्ञान से वञ्चित रह जाते हैं। इन्हीं सब कारणों से प्रेरित हो, यह छोटा सा ग्रन्थ रचकर सेवा में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें पिङ्गल-अलङ्कार तथा रस इन तीनों काव्याङ्गों का सम्मिश्रण है। पिङ्गल तथा अलंकार खण्ड में केवल उतने ही छन्दों तथा अलंकारों के नाम और लक्षण लिखे गये हैं जिनका ज्ञान हाई स्कूल परीक्षार्थियों तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथमा तथा मध्यमा परीक्षा के परीक्षार्थियों के लिये आवश्यक है। प्रत्येक छन्द, अलंकार तथा रस की व्याख्या सरल तथा स्पष्ट गद्य में की गई है। उदाहरण प्राचीन ग्रन्थों से विशेष कर रामायण से दिये गये हैं। कहीं कहीं

पर अन्य प्राचीन ग्रन्थों से भी उदाहरण उद्धृत किये गये हैं। इस पुस्तक के बनाने में जिन ग्रन्थों से सहायता ली गई है उनके लेखकों को कृतज्ञताञ्जलि सादर समर्पित की जाती है। साथ ही लाला वंशीधर अग्रवाल बुकसेलर उरई को भी हृदय से धन्यवाद देता हूँ जिनकी प्रेरणा से मैंने यह पुस्तक लिखी है।

विनीत—

सिद्धगोपाल मिश्र

विशारद 'सुधाकर'

॥ श्री गणेशायनमो नमः ॥

॥ अथ ॥

काव्याङ्ग त्रिवेणी
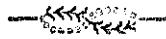
प्रथम खण्ड—पिङ्गल

पिङ्गल वह शास्त्र है जिससे छंद, उनके भेद तथा उनकी रचना का सम्यक् ज्ञान हो।

रचना दो प्रकार की होती है १- गद्य रचना २-पद्य रचना ॥

गद्यरचना जिस रचना में वाक्य की मात्राओं, तथा उसके वर्णों का कोई नियमित क्रम, कोई नियमित संख्या, कोई नियमित विराम तथा गति व प्रवाह का विचार न हो। इसमें व्याकरणानुसार शब्दों के क्रम का विचार रखते हुये ही शब्द योजना की जाती है; वर्णों के क्रम का नहीं।

पद्यरचना वह रचना है जिसमें मात्रा, वर्ण, विराम, गति तथा चरणान्त में वर्ण समता के नियमों का विचार रख

कर शब्द रचना की जाती है । ऐसी रचना को पद्य, छंद व कविता कहते हैं । इसमें व्याकरणानुसार शब्द योजना नहीं की जाती ।

कविता हर प्रकार की पद्य रचना जो पिङ्गल के नियमानुसार मात्रा, वर्ण, गति या प्रवाह तथा चरणान्त वर्णों की समता का ध्यान रखते हुये रची जाती है कविता नहीं कही जा सकती किन्तु ऐसी रचना तुकबन्दी या पद्य कहलाती है कविता वही रचना कही जा सकती है जिसमें भाव, अलौकिक आलंङ्कारिक चमत्कार तथा रस की धारा प्रवाहित हो-साथ ही साथ जिसमें अपूर्व आनन्द प्रदायिनी शक्ति हो और पढ़ने मात्र ही से पाठक को तन्मय कर सुख में निमग्न करने में समर्थ हो।

गद्य रचना चाहे जितनी ही उत्कृष्ट, भावपूर्ण तथा आलंङ्कारिक चमत्कार परिपूर्ण हो कविता या काव्य नहीं कही जा सकती । काव्य तो पद्य ही में रचे जा सकते हैं ।

वर्ण दो प्रकार के होते हैं १—ह्रस्व या लघु २· दीर्घ या गुरु ।

मात्रा एक लघु वर्ण के उच्चारण में जितना समय लगता है यथार्थ में उतने समय को मात्रा कहते हैं । परन्तु साधारण रीति से काम चलाने के लिये ऐसी प्रथा चल गई है कि एक लघु वर्ण को ही एक मात्रा तथा एक दीर्घवर्ण को दो मात्रा कहते हैं । जैसे-राम शब्द में रा=२ मात्रा, म=१ मात्रा । पिङ्गल

में लघु वर्ण का चिह्न " । " तथा दीर्घ का " ऽ " माना जाता है ॥ इन्हें मत्त, मत्ता, कल तथा कला कहते हैं ।

गुरु वर्ण १ आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ तथा औ स्वरों युक्त वर्ण दीर्घ या २ मात्रा के माने जाते हैं। ॠ तथा ॡ युक्त वर्ण भी दीर्घ माने जाते हैं ।

२ अनुस्वार युक्त, विसर्ग युक्त: तथा संयुक्त वर्णों के प्रथम वर्ण दीर्घ या २ मात्रा के माने जाते हैं । जैसे-कंकाल में कं, अत: का त तथा चित्त का चि दीर्घ ही माना जायगा । कंकाल शब्द ५ मात्रा का, अत: ३ मात्रा का और चित्त ३ मात्रा का माना जायगा ।

३ कभी कभी ऐसे उदाहरण भी दृष्टिगोचर होते हैं कि वर्ण तो ह्रस्व होते हैं परन्तु समास चिह्न लगा कर दूसरे शब्द से संयुक्त कर देते हैं, ऐसी दशा में ह्रस्व वर्ण दीर्घ माना जाता है यथा 'वीर-प्रवर' इसमें 'वीर' का 'र' लघु वर्ण है परन्तु समास चिह्न से प्रवर से संयुक्त होने पर पढ़ते समय दीर्घ बनाकर पढ़ा जायगा तथा 'र' में २ मात्रा मानी जायेंगी।

लघु वर्ण १ साधारणत: अ, इ, उ, ऋ तथा ऌ स्वरों युक्त वर्ण लघु माने जाते हैं ।

२ संयुक्त वर्ण सर्वदैव ही १ मात्रा का माना जाता है जैसे विक्रम में क्र, भ्रज में भ्र ह्रस्व माने जायगे ।

३ प्रायः लिपिरीति के अनुसार किसी वर्ण का रूप तो दीर्घ होता है परन्तु छन्द की गति के विचारसे उसके उच्चारण में १ मात्रा ही का समय लगता है विशेष कर ए, ऐ, ओ तथा औ स्वर युक्त वर्णों में ही प्रायः ऐसा होता है। अतः ऐसे वर्ण को लघु ही मानते हैं। जैसे 'जामवन्त के वचन सोहावे' में 'सोहावे' में 'सो' सस्वर होने से दीर्घ है परन्तु उच्चारण में एक ही मात्रा का समय लगता है अतः उसे लघु ही मानना पड़ेगा।

४ चन्द्र बिन्दु युक्त वर्ण भी लघु ही माने जाते हैं जैसे नंद-नँदन। इसमें नँदन के 'नँ' में चन्द्र बिन्दु है इससे 'नँ' २ मात्रा का न होकर १ ही मात्रा का माना जायगा। इस प्रकार नंद नँदन में कुल ६ मात्रायें होंगी।

छन्द हिन्दी साहित्य में छन्द दो प्रकार के होते हैं प्रथम मात्रिक तथा दूसरे वर्णिक। प्रायः साधारणतः छन्द में चार चरण होते हैं केवल कुछ ही छन्द ऐसे होते हैं जिनमें ४ से अधिक चरण होते हैं। छन्दों के लक्षण लिखते समय १ चरण का जो लक्षण लिखा जायगा, वही चारो चरणों का समझना चाहिए।

मात्रिक छन्द वह छन्द है जिनमें मात्राओं की संख्या का नियम हो। यथा 'चौपाई'। इसके प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें होती हैं।

वर्णिक छन्द वह कहलाता है जिसमें वर्णों की संख्या तथा लघु गुरु का नियम हो। इसे वृत भी कहते हैं। जैसे द्रुतविलम्बित वृत्त के प्रत्येक चरण में १२ वर्ण होते हैं इनमें चौथा, सातवां, दसवां तथा बारहवां वर्ण दीर्घ तथा शेष लघु होने चाहिये। अथवा प्रत्येक चरण में १ नगण २ भगण तथा १ रगण होना चाहिए।

किन्हीं २ मात्रिक तथा वर्णिक छन्दों में विराम का भी नियम होता है जैसे मात्रिक छन्द हरिगीतिका के प्रत्येक चरण में १६ तथा १२ मात्राओं पर विराम देकर २८ मात्रायें होती हैं और शिखरिणी वृत्त में ६ वें तथा ११ वें वर्णों पर विराम देकर प्रत्येक चरण में १७ वर्ण होते हैं। इस विराम को यति भी कहते हैं।

छंद दोष १ जब छन्द की मात्राओं की संख्या नियमित संख्या से कम या अधिक होती हैं तो वहां पर छंद दोषयुक्त हो जाता है।

२ यतिभंगदोष-जब विराम निश्चत स्थान पर न हो तो वहां पर यति भंग दोष हो जाता है।

३ गति भंगदोष-छन्द के सब नियमों का पालन करते हुए भी जहां पर पाठ प्रवाह ठीक न हो वहां पर गति भंग दोष होता है यथा- 'जबते राम ब्याह घर आये'। इसमें १६ मात्रायें हैं और चौपाई की गति भी है किन्तु यदि इसको बदल कर

"राम जबने ब्याह घर आये" पाठ करदें तो इसमें १६ मात्रायें होते हुए भी चौपाई की गति न होने से गति भंग दोष हो जायगा।

छन्द रचना में तथा पाठ करने में गति या पाठ प्रवाह का बहुत ही अधिक ध्यान रखना चाहिये। इसके लिये कोई नियम नहीं बतलाया जा सकता। यह केवल अभ्यास पर निर्भर है।

चरणान्त वर्ण समता ऐसा कोई नियम नहीं है कि चरणान्त के वर्ण समस्वर ही होने चाहिये। परन्तु ऐसा होने से छन्द सुनने में मधुर जान पड़ता है। मात्रिक छंदों में चरणान्त वर्ण अवश्य ही समस्वर हों तभी वे कर्ण प्रिय होते हैं। इसीसे हिन्दी भाषा में सर्वत्र ही चरणान्त के वर्ण समस्वर रखने की चाल सी पड़ गई है। वर्णिक छंद में आजकल अतुकान्त रचना करने की भी प्रथा सी चल गई है। जिसके प्रवर्तक 'प्रिय प्रवास' रचयिता हैं।

छंद भेद मात्रिक तथा वर्णिक छंदों में से प्रत्येक तीन तीन प्रकार के होते हैं। (१) सम (२) अर्द्ध सम (३) विषम पुन: समछन्दों के दो भेद होते हैं (१) साधारण (२) दंडक। इस प्रकार छंदों के भेद जानने के हेतु अगले वृक्ष को ध्यान में रखना चाहिये॥
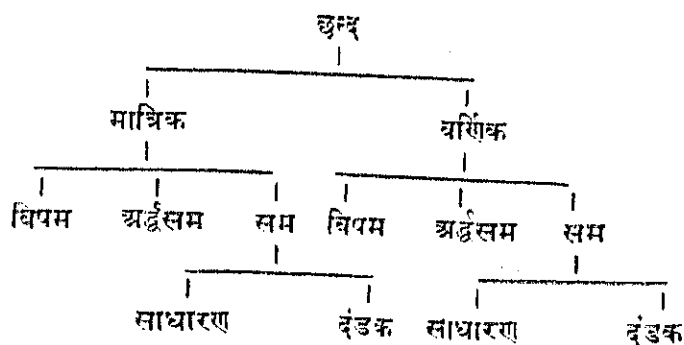
मात्रिक सम छंद वे छन्द कहलाते हैं जिनके चारों चरणों में बराबर मात्रायें हों मात्रिक समों में ३२ मात्रा तक के साधारण और इससे अधिक मात्रा वाले दंडक कहलाते हैं।

मात्रिक अर्द्धसम वे छंद कहलाते हैं जिनके पहिले तथा तीसरे चरणों में बराबर मात्रायें हों तथा दूसरे और चौथे चरण में भी बराबर मात्रायें हों।

मात्रिक विषम वे छन्द हैं जिनके चारो चरणों में असमान मात्रायें हों।

मात्रिक सम छंद

चौपाई इस मात्रिक सम छन्द के प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें होती हैं। इसके चरण के अन्त में जगण '।ऽ।' तथा तगण 'ऽऽ।' कदापि नहीं रखना चाहिये। नियम तो नहीं है

किन्तु चरणान्त में दो गुरु 'ऽऽ' रखने से गति मधुर हो जाती है और पढ़ने में कर्ण प्रिय हो जाती है। यथा:—

बन्दहु गुरु पद-पद्म परागा। सरस सुवास सुरुचि अनुरागा॥
अमिय मूरि मय चूरन चारू। शमन सकल भवरुज परिवारू॥

चवपैया १०, ८ और १२ के विराम से इसके प्रत्येक चरण में ३० मात्रायें होती हैं। चरणान्त में एक सगण (॥ऽ) तथा १ गुरु का होना आवश्यक है। यथा:—

भे प्रगट कृपाला, दीन दयाला, कौशिल्या-हितकारी।
हरषित महतारी, मुनि-मन-हारी, अद्भुत रूप निहारी॥
लोचन अभिरामा, तनु घनश्यामा, निज आयुध भुज चारी।
भूषण वनमाला, नयन विशाला, शोभा-सिन्धु खरारी॥

तोमर इस छन्द के प्रत्येक चरण में १२ मात्रायें होती हैं अन्त में गुरु लघु वर्णों का होना आवश्यक है। यथा:—

तब चले बाण कराल। फुँकरत जनु बहु ब्याल॥
कोप्यो समर श्रीराम। चले विशिख निशित निकाम॥

नरेन्द्र १६ और १२ पर विराम देकर इसके प्रत्येक चरण में २८ मात्रायें होती हैं। चरणान्त में दो गुरु वर्ण का होना आवश्यक है। इसे सार छंद भी कहते है। यथा:-

हे अखिलेश्वर दयानिधे प्रभु, सत्पथ हमें दिखाओ।
सत्वर ज्ञान भानु प्रकटे उर, तम अज्ञान मिटाओ॥

सतगुण पंकज खिले अहर्निशि, निशा मूर्खता नाशै।
देश निवासी चक प्रमुदित कर, तन जाड्यर्थ विनाशै॥

वीर ८, ८ और १५ के विराम से इसके प्रत्येक चरण में ३१ मात्रायें होती हैं। अन्त में गुरु तथा लघु का होना बहुत आवश्यक है। आल्हा इसी छंद में गाया जाता है। इसी हेतु कोई कोई कवि इसे आल्हा छंद भी कहते हैं। यथा:-
सुमिरि भवानी जगदम्बा का, औ शारद के चरण मनाय।
आदि सरसुती, तुमका ध्यावैं, माता कंठ विराजौ आय॥
जोति बखानौं, जगदंबा कै, जिनकै कला बरणि नहिं जाय।
सरद चंद सम आनन राजै, अति छबि अङ्ग अङ्ग रहि छाय॥

रोला ११ तथा १३ मात्राओं पर विराम देकर इस छंद के प्रत्येक चरण में २४ मात्रायें होती हैं। किसी २ आचार्य के मत से इसके चरणान्त के दो वर्ण गुरु होने चाहिए। परन्तु यह नियम सर्वत्र नहीं पाया जाता।

यथा:—मंजु महामुद दानि, मनोहरता छबि रासी।
जगमगात हुलसात, विलसती चन्द्र प्रभासी॥
सरसावति-सुख-सिन्धु, हर्ष-वीची लहराती।
दीपावलि जगमगति, लिये दीपावलि आती॥

एक कवि ने इसी छंद में इसकी परिभाषा तथा लक्षण यों लिखे हैं:—

जाके प्रति पद मांहि, कला चौबिस गनि राखैं।
रोला अथवा काव्य, छन्द तासहँ कवि भाखैं॥
नियम न लघु गुरु केर, रखैं अन्ते गुरु दोई।
ग्यारह पर विश्राम, किये अति उत्तम होई॥

हरिगीतिका १६ और १२ के विराम से इसके प्रत्येक चरण में २८ मात्रायें होती हैं। चरणान्त में १ लघु गुरु का होना परमावश्यक है। इसकी गति ठीक रखने के लिये प्रत्येक चरण की पांचवीं, बारहवीं, उन्नीसवीं तथा छब्बीसवीं मात्रायें लघु रखनी चाहिये, नहीं तो छंद की गति बिगड़ेगी। यथा—

पद पद्म धोय चढ़ाय नाव न, नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउर आन दशरथ-शपथ सब सांची कहौं॥
बरु तीर मारहि लखन पै जब, लग न पांव पखारिहौं।
तब लग न तुलसीदास नाथ, कृपालु पार उतारिहौं॥

मात्रिक अर्द्धसम छंद

मात्रिक अर्द्धसमछंद— वे छंद हैं जिनके प्रथम तथा तीसरे चरण की मात्रायें बराबर हों और दूसरे तथा चौथे चरण की मात्रायें बराबर हों। इसप्रकार के छंद बहुधा दोही पंक्ति में लिखे जाते हैं अर्थात् पहिला और दूसरा चरण एक पंक्ति में तथा तीसरा और चौथा चरण दूसरी पंक्ति में। प्रसिद्ध उदाहरण ये हैं:-

उल्लाला इस मात्रिक अर्द्ध सम छंद के पहिले तथा तीसरे चरण में १५ और दूसरे तथा चौथे चरण में १३ मात्रायें होती हैं यथाः-

खप्पर सज फिर नृत्य कर, शत्रु नाश हित अघहरणा ।
भारत कर उद्धार कर, आर्य जाति यह तव शरणा ॥

दोहा इस छंद के विषम अर्थात् पहिले तथा तीसरे चरणों में १३ तथा सम अर्थात् दूसरे तथा चौथे चरणों में ११ मात्रायें होती हैं। विषम चरणों के आदि में जगण न हो तो बहुत अच्छा है और सम चरणों के अन्त में तगण (ऽऽ।) तथा जगण (।ऽ।) का होना आवश्यक माना जाता है।

यथाः— गिरा अर्थ जल वीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न ।
बन्दहु सीताराम पद, जिनहिं परम प्रिय खिन्न ॥
पुनः— श्री गुरु चरण सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि ।
बरणहु रघुबर विमल यश, जो दायक फल चारि ॥

सोरठा इस छंद के विषम चरणों में ११ मात्रायें तथा सम चरणों में १३ मात्रायें होती हैं। अर्थात् यह दोहे का विलोम है। यथाः-

निज मन मुकुर सुधारि, श्री गुरु चरण सरोज रज ।
जो दायक फल चारि, बरणहु रघुबर विमल यश ॥
पुनः— जेहि सुमिरत सिधि होय, गन नायक करिवर बदन ।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धिराशि शुभ गुण सदन ॥

बरवै इस छंद के विषम चरणों में १२ मात्रायें तथा सम चरणों में ७ मात्रायें होती हैं। दूसरे तथा चौथे चरण के अन्त में जगण (।ऽ।) का होना आवश्यक है। यथा—

> कमठ पीठ धनु सजनी, कठिन अँदेश।
> तमकि ताकि ये तुरि हैं, कहो महेश॥

मात्रिक विषम छंद

मात्रिक विषम छंदों में केवल दो ही छंद बहुत प्रसिद्ध हैं उन्हीं के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

कुण्डलिया आदि में १ दोहा पश्चात् १ रोला छंद जोड़ कर ६ पद का यह छंद माना जाता है। दोहे का अन्तिम चरण रोला का प्रथम चरणार्द्ध होता है और रोले के अन्तिम चरण के कुछ अन्तिम वर्ण व शब्द वही होने चाहिये जो दोहे के आदि में हो। यथा—

> साँई ये न विरुद्धिये, गुरु पंडित कवि यार।
> बेटा वनिता पौरिया, यज्ञ करावन हार॥
> यज्ञ करावन हार, राजमंत्री जो होई।
> विप्र परोसी वैद्य, आपको तपै रसोई॥
> कह गिरधर कविराय, युगन ते यहि चलि आई।
> इन तेरह से तरह दिये, बनि आवै साँई॥

छप्पय या षट्पद रोला और उल्लाला मिलकर छप्पय छंद बनता है। उल्लाला छंद के दूसरे तथा चौथे चरण के अन्त में यदि नगण (।।।) रक्खा जाय तो छप्पय की गति अधिक रोचक हो जाती है। एक कवि ने इसके लक्षण इसी छंद में यों लिखे हैं। यथा:—

रोला को धरि प्रथम, बहुरि उल्लाला राखैं।
ताको छप्पय छंद नाम, सबही कवि भाखैं॥
लघु गुरु नियम न कोइ, कहैं कविराई कोई।
कोई रोला अन्त माहि, राखैं गुरु दोई॥
उल्लाला के विषय महँ, कोई कवि ऐसो कहहिं।
दूजे चौथे चरण महँ, अन्त वर्ण त्रय लघु रहहिं॥

वर्णिक वृत्त

वर्णिक वृत्तों के सम्यक् ज्ञान के लिये गणों का जानना परमावश्यक है। तीन वर्ण का 'गण' होता है। प्रस्तार से तीन वर्ण के समूह के ८ रूप होते हैं अतः ८ गण माने जाते हैं। जिनके नाम, रूप तथा उदाहरण इस प्रकार हैं:—

संख्या	नाम	रूप	उदाहरण	संकेत
१	मगण	SSS	मेधावी	म
२	नगण	।।।	नगर	न
३	भगण	S।।	भूषण	भ
४	यगण	।SS	ययाती	य

५	जगण	।ऽ।	जहान	ज
६	रगण	ऽ।ऽ	राधना	र
७	सगण	।।ऽ	सरजू	स
८	तगण	ऽऽ।	तातार	त

किसी कवि ने इनके नाम तथा उदाहरण इस प्रकार छन्द में लिखा है ।

भगण मेधावी, नगण की नगर उपमा जानिये ।
भगणकी भूषण, ययाती यगण को पहिचानिये ॥
जगण केर जहान जानहुँ, रगण को है राधना ।
सगण की सरजू, तगण तातार के सम जानना ॥

स्मरण रखना चाहिये कि प्रथम ४ गण शुभ तथा पश्चात् के ४ गण अशुभ माने जाते हैं। अतएव कविता रचयिताओं को कविता के प्रारम्भ में प्रथम ४ गणों में से ही कोई गण रखना चाहिए। बाद के चार गणों को प्रारम्भ में न रखना चाहिए। साथ ही ह, भ, प, र वर्ण अशुभ माने जाते हैं अतएव कविताके प्रारम्भ में ये वर्ण न आने चाहिए। यद्यपि दीर्घ होजाने से तथा देवताओं के नामके प्रयोग में दोष नहीं माना जाता-जैसे 'ह' हरी शब्द में प्रयोग होने पर दोष मुक्त माना जायगा उसी प्रकार भरत तथा भारत में 'भ,' राम में 'र' अशुभ नहीं माने जांयगे।

वर्णिक वृत्तों में २६ वर्ण तक के साधारण और इससे अधिक वर्ण वाले दंडक कहलाते हैं।

वर्णिक साधारण वृत्त

इन्द्रवज्रा इस वृत्त के प्रत्येक चरण में त, त, ज और दो गुरु अर्थात् दो तगण, १ जगण तथा दो गुरु मिलकर ११ अक्षर होते हैं यथा—

मैं राज्य की चाह नहीं करूंगा।
है जो तुम्हें इष्ट वही करूंगा॥
संतान जो सत्यवती जनेगी।
राज्याधिकारी वह ही बनेगी॥

त्रोटक इस वृत्त के प्रत्येक चरण में ४ सगण मिलकर १२ वर्ण होते हैं। यथा—

जय राम सदा सुख धाम हरे।
रघुनायक शायक चाप धरे॥
भव-वारण-दारुण सिंह प्रभो।
गुण-सागर नागर नाथ विभो॥

भुजंग प्रयात इस वृत्त के प्रत्येक चरण में ४ यगण मिलकर १२ वर्ण होते हैं यथा—

सखा मेघमाला शिखी पाक कारी।
करै कोतवाली महा दंड धारी॥
पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके।
करेगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको॥

वसन्ततिलका इस वृत्त के प्रत्येक चरण में त, भ, ज, ज और दो गुरु मिलकर १४ वर्ण होते हैं। यथा—

है आज तो दिवस कृष्ण चतुर्दशी का।
पूरा विकास फिर क्यों यह है शशी का॥
यों चित्त को चकित जो कर डालती है।
ऐसी मयंक वदनी यह मालती है॥

मालिनी इस वृत्त के प्रत्येक चरण में न, न, म, य तथा य मिलकर १५ वर्ण होते हैं। यथाः—

जिस समय हुआ था, भूप नाराच्च द्वारा।
यवनपति कृतघ्नी का, शिरच्छेद ही था॥
सकल यवन सेना, स्वार्थ चिन्ता निमग्ना।
भ्रमण कर प्रजा को, दुःख देती अनेकों॥

द्रुतविलम्बित इस वृत्त के प्रत्येक चरण में न, भ, भ तथा र मिलकर १२ वर्ण होते हैं। यथाः—

गगन श्यामलता सुषुमामयी।
शतगुणी सुखदा धन निर्गता॥
अकथनीय हुई जिमि पंक से।
विकसिता कलिका बहिरागता॥

शिखरिणी इस वृत्त के प्रत्येक चरण में य, म, न, स, भ तथा १ लघु और १ गुरु मिलकर १७ वर्ण होते हैं छठवें वर्ण पर विराम होता है। यथाः—

हिमांशू चन्दा सों, कुसुमशर तोसों कहत क्यों ।
नहीं सांचे दोऊ, इन गुणन मोलें जनन को ॥
वह छोड़े ज्वाला, विषम पाला सँग धरी ।

तुह वज्राकारी, कुसुम के बानन हनें ॥

बाईस वर्ण से छब्बीस वर्ण वाले वृत्तों में से कई एक वृत्त सवैया के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनमें से निम्नाङ्कित बहुत प्रसिद्ध हैं।

मत्तगयंद ७ भगण तथा २ गुरु का प्रत्येक चरण होता है। यथा:—

शोभित मंचन की अवली गज दंत मई छवि उज्वल छाई।
ईश मनों वसुधा में सुधारि सुधाधर मंडल मंडि जोन्हाई॥
तामहँ केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई।
देवन सों जनु देव सभा शुभ सीय स्वयम्वर देखन आई॥

सुन्दरी सवैया इस वृत्त के प्रत्येक चरण में ८ सगण और १ गुरु मिलकर २५ वर्ण होते हैं। यथा:—

किसलै कलिका कुसुमावलि कुँज लता तरु पुञ्जन में सरसाई।
खग कोकिल वृन्द सुकूक सुनात अली अवली रस चूसन धाई॥
वसुधा सुशुभा छवि मोद अपार बयारि बहै त्रिविधा सुखदाई।
सुख हर्ष दिगन्त छयो वस अन्त हेमन्तको, देख वसन्त अधाई॥

इसी प्रकार ८ भगण का किरीट तथा ८ जगण और १ लघु की लवंगलता सवैया बहुत प्रसिद्ध हैं।

वर्णिक समान्तर्गत दंडक।

२६ वर्ण से अधिक वर्ण वाले वृत्त दंडक कहलाते हैं। इन के दो भेद हैं (१) गणबद्ध (२) मुक्तक।

गणबद्ध दंडक वह है जिसके वर्णों की संख्या गणों के अनुसार नियमित हो।

मुक्तक वह दंडक है जिसके वर्णोंकी केवल संख्या नियमित हो। गणों का बंधन न हो। ऐसे मुक्तकों में 'मनहरण' हिन्दी साहित्य में बहुत प्रचलित है इसको कवित्त व घनाक्षरी भी कहते हैं।

मनहरण इस वृत्त के प्रत्येक चरण में ३१ वर्ण होते हैं। १६ तथा १५ पर विराम रख कर अन्त में कम से कम १ गुरु अवश्य होना चाहिये। यथा:—

देखनको झांकी हो विहारीजू की सर्व काल,
गाइवे को एक नाम रामनाम गाइये।
भोजन को सात्विक परिश्रम-उत्पन्न-अन्न,
पीवें को सुरसरि को निर्मल जल पाइये॥
पौरुष परार्थ धन धान्य उपकार अर्थ,
बुद्धि हो तो आर्ति-दुःख-सिंधु अवगाहिये।

कर्म वश जन्म लो 'सुधाकर' हो भारत में,

जीवन औ मृत्यु प्रभु देश हित चाहिये ॥

वर्णिक अर्द्धसम वृत्त

ऐसे वृत्तों में उपजाति वृत्त बहुत प्रसिद्ध है किन्तु इनका प्रयोग संस्कृत में ही होता है, हिन्दी में नहीं।

वर्णिक विषम वृत्त।

ऐसे वृत्तों का चलन केवल मराठी में बहुत है हिन्दी में नहीं। इसी से उदाहरण नहीं लिखते।

॥ श्री गणेशाय नमो नमः ॥

॥ अथ ॥

काव्याङ्ग त्रिवेणी
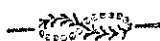
द्वितीय खण्ड—अलंकार

अलंकार वह सामग्री है जिससे किसी वाक्य में अलौकिक चमत्कार तथा रोचकता आजाती है। या वर्णन करने के चमत्कारिक ढंग को अलंकार कहते हैं।

अलंकार भेद मुख्य भेद ३ हैं (१) शब्दालंकार (२) अर्थालंकार (३) उभयालंकार

शब्दालंकार जब केवल शाब्दिक चमत्कार हो। किन्तु यदि शब्दों को बदलकर उनके पर्यायवाची शब्द रखदें तो वह प्रथम चमत्कार तथा रोचकता न रह जायगी। यथा:—

वैर विगत विहरत विपिन, मृग विहंग बहुरंग"।

अर्थालंकार जहां शाब्दिक चमत्कार के स्थानमें आर्थिक चमत्कार हो। यथाः—'पुनि आउब यह बिरियां काली। अस कहि मन विहँसी इक आली'॥ यह अलंकार अर्थ पर निर्भर है शब्दों पर नहीं, इसमें शब्द बदले जा सकते हैं।

उभयालंकार एक से अधिक अलंकारों के सम्मिश्रण को उभयालंकार कहते हैं। परन्तु इसमें जिस अलंकार की मुख्यता प्रतीत होगी वही अलंकार मान लिया जायेगा। यथाः—

लसत मंजु मुनि मंडली, मध्य सीप रघुचन्द।
ज्ञान सभा जनु तनु धरे, भक्ति सच्चिदानंद॥

इसमें 'म' की आवृत्ति कई बार होनेसे अनुप्रास है। 'जनु' से उत्प्रेक्षालंकार स्पष्ट है साथ ही साथ क्रमालंकार भी है।

शब्दालंकार

यद्यपि शब्दालंकार के १० भेद प्रमुख हैं किन्तु इनमें (१) अनुप्रास (२) भाषा समक (३) यमक (४) वक्रोक्ति (५) विप्सा (६) श्लेष बहुत प्रसिद्ध हैं। अतएव केवल इन्हीं की विवेचना की जायेगी।

अनुप्रास

अनुप्रास जहां व्यँजनों की समानता हो उनके स्वर चाहे एक से न हों। उसे अनुप्रास अलंकार कहते हैं। इसके मुख्य भेद पांच हैं। (१) छेकानुप्रास (२) वृत्यनुप्रास (३) श्रुत्यनुप्रास (४) लाटानुप्रास (५) अन्त्यनुप्रास।

१ **छेकानुप्रास** जब एक वर्ण की व अनेक वर्णों की आवृत्ति केवल एक बार हो अर्थात् एक या अनेक वर्ण का प्रयोग केवल दो बार हो चाहे वह आदि में हो चाहे अन्त में।

यथा:—जब ते राम ब्याह घर आये।
नित नव मंगल मोद बधाये॥

पुन:—सोइ कवि कोविद सोइ रनधीरा।
जो छल छांडि भजै रघुबीरा॥

यहां नित तथा नव में 'न', मंगल तथा मोद में 'म' की तथा कवि और कोविद में 'क' की, छल और छांडि में 'छ' की आवृत्ति केवल एक बार है।

वृत्यनुप्रास जहां एक व अनेक वर्णों की आवृत्ति कईबार हो वहां वृत्यनुप्रास होता है छेकानुप्रास में एक व अनेक वर्णों की आवृत्ति केवल एकबार तथा वृत्यनुप्रास में कई बार आवृत्ति होती है। यही दोनों में भेद है। इस अलंकार का सम्यक ज्ञान प्राप्त करने के लिये वृत्तियों का जानना परमावश्यक है। वृत्तियां ३ है। (१) उपनागरिका (२) परुषा (३) कोमला। इन्हीं को क्रमश: (१) वैदर्भी (२) गौड़ी (३ तथा पांचाली भी कहते हैं।

उपनागरिका वृत्ति मधुरता व्यंजक वर्ण अर्थात् टवर्ग को छोड़ शेष मधुर वर्ण (प्रत्येक वर्ग के प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय वर्ण) तथा सानुनासिक वर्ण जिस कविता में अधिक हों उसे उपनागरिका वृत्ति कहते हैं। शृंगार, हास्य तथा करुणा रस की कविता इसमें अच्छी लगती है।

परुषावृत्ति टवर्ग, संयुक्त वर्ण, रेफ, तथा श, ष तथा लम्बे समास जिस कविता में अधिक हों उसे परुषावृत्ति कहते हैं। रौद्र, वीर तथा भयानक रस की कविता इस वृत्ति में अच्छी लगती है।

कोमला य, र, ल, व, स, ह, समास रहित व छोटे समास जिसमें अधिक हों उसे कोमला वृत्ति कहते हैं। शान्त, अद्भुत तथा वीभत्स रस की कविता इसमें अच्छी लगती है।

रस हिन्दी साहित्य में ९ रस होते हैं। शृङ्गार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, भयानक, शान्त, अद्भुत तथा वीभत्स। किन्तु आजकल वात्सल्य नाम का दसवां रस और भी माना जाता है।

[उपनागरिका वृत्ति के अनुसार।]

सरल सुसाहिब शील निधान्। प्रणतपाल सर्वज्ञ सुजान् ॥
शील सकोच सिन्धु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल स्वभाऊ ॥
सुनु सेवक सुर तरु सुर धेनू। विधि हरि हर वंदित पद रेनू ॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रणतपाल सचराचर नायक ॥
पुनः—रघुनंद आनंद कंद कौशल, चन्द दशरथ नंदनं ॥

[परुषा वृत्ति के अनुसार]

कवित्त—मारि टारि डारौं कुम्भकर्णहि बिदारि डारौं,
मारौं मेघनादे आजु यल यों अनन्त हौं।

कहैं पद्माकर त्रिकूट हू को ढाहि डारौं,
डारत करेई जातुधानन को अन्त हौं ॥
अच्छहिं निरच्छ कपि रुच्छ ह्वै उचारौं इमि,
तोम तिच्छ तुच्छन को कछु वै न गंत हौं।
जारि डारौं लंकहि उजारि डारौं उपवन,
फारि डारौं रावण को तौ मैं हनुमंत हौं ॥

पुनः— सुनिये वरवीर ! गंभीर प्रणवीर प्रण,
भाषै यह भीम सभामाहिं ह्वै निशंक उर।
कीन्हों अपमान अभिमान मान शान सब,
आन मैं भुलाऊँ सुत पांडु अकलंक कर ॥
करके गदा प्रहार दाहिनी भुजा उखारि,
रक्षक, सँहार कै फेकूं भुज पंक पर।
कोटि वर्ष नर्क परूँ उर ना विदीर्ण करूं,
रक्त पी सुलाऊं न जो मृत्यु पर्य्यंक पर ॥

पुनः—कपि देखा दारुण भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा
पुनः— खग काक कंग शृगाल। कटकटहिं कठिन कराल ॥

[कोमला वृत्ति के अनुसार]

यथा—सोइ जानहिं जेहि देहु जनाई।
जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई ॥
पुनः—नेति नेति जेहि वेद निरूपा। चिदानन्द निरुपाधि, अनूपा।

३ श्रुत्यनुप्रास जहां एक ही स्थान से उच्चरित होने वाले वर्णों की समता हो उसे श्रुत्यनुप्रास कहते हैं।

यथा:—गीध अधम खग आमिष भोगी।

इसमें प्रारम्भ में कंठ से उच्चरित होने वाले वर्णों का प्रयोग अधिकतर है। इससे यह कर्ण मधुर जान पड़ता है। इसी तरह और भी समझ लो।

पुन:—जलज जगत-प्रिय जलत हिम, छुवत जलज छय होय॥

इस में तालव्य वर्णों की प्रचुरता है। इससे यह भी पढ़ने में मीठा जान पड़ता है।

४ लाटानुप्रास (यथार्थ में प्रथम कथित अनुप्रास अक्षरों के अनुप्रास हैं किन्तु लाटानुप्रास शब्दानुप्रास है,) शब्द और उसका अर्थ वही रहे केवल अन्वय करने से अर्थ में भेद हो जाय। उसे लाटानुप्रास कहते हैं।

उदाहरण— राम हृदय जाके बसे, विपति सुमंगल ताहि।
राम हृदय जाके नहीं, विपति सुमंगल ताहि॥
(अलंकार मंजूषा)

जिसके हृदय में राम का वास है उसके लिए विपत्ति भी मंगलदायक ही होती है किन्तु जिसके हृदय में श्री राम का वास नहीं उसके लिये मंगल भी दुखदायक विपत्ति है।

पुन:—मायापति वारे लीलावारे की सहाय हेतु,
दीन्हे विधि खेल मायावारे रसवारे हैं।
प्रेमरस ममता वेदवारे ने प्रदान कियो,
मद औ विसमता देत वे जो वर्दवारे हैं॥

लीलाधारे, मायाधारे, रसधारे, वेदधारे, वरदधारेमें 'धारे' शब्द का अर्थ सर्वत्र एक ही है किन्तु भिन्न २ शब्दों के साथ समास हो जाने से उन शब्दों के भिन्न २ अर्थ होजानेसे लाटानुप्रास है।

अन्त्यनुप्रास प्रत्येक छंद के चारों चरणान्त के वर्ण एक ही होते हैं इसी को तुकान्त कहते हैं। इसी तुकान्त को अन्त्यानुप्रास कहते हैं। भाषा काव्य में ६ प्रकार के तुकान्त होते हैं।

१ **सर्वान्त्य** जिसमें चारों चरणों के तुकान्त एक हों। जैसे सवैया या कवित्त के तुकान्त मिलते हैं।

२ **समान्त्य विषमान्त्य** जिसमें पहिले व तीसरे चरण के, तथा दूसरे वा चौथे के तुकान्त मिलें अर्थात् विषम विषम तथा सम सम चरणों के तुकान्त मिलते हों। तुलसी कृत रामायण में बाल कांड में प्रथम ५ सोरठों के। उदाहरण:-

जेहि सुमिरत सिधि होय, गण नायक करि वर वदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि राशि शुभ गुण सदन॥

३ **समन्त्य** जब केवल सम चरणों के अर्थात् दूसरे तथा चौथे चरणों के तुकान्त मिले। उदाहरण—कोई भी दोहा हो सकता है।

४ **विषमान्त्य** जब केवल विषम चरणों के अर्थात् पहिले तथा तीसरे चरणों के तुकान्त मिलते हैं। उदाहरण कोई सोरठा हो सकता है।

५. **समविषमान्त्य** जिसमें पहिले तथा दूसरे और तीसरे तथा चौथे चरणों के तुकान्त मिलें। उदाहरण कोई चौपाई हो सकती है।

६ **भिन्नान्त्य** जिसमें चारों चरणों के तुकान्त भिन्न हों उदाहरण पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय का प्रिय-प्रवास गृन्थ देखो—

२ भाषा समक

जब कई भाषाओं के शब्दों को लेकर कविता की जाती है। वहाँ समक अलंकार होता है। यथा:—

शबाने हिजराँ दराज़ चूँ जुल्फ़ों रोज़े वस्लत चु उम्र कोता।
सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूं अंधेरी रतियां॥

३ यमक अलंकार

वैसा ही शब्द या वही शब्द बार बार आवे किन्तु अर्थ भिन्न भिन्न हो उसे यमक अलंकार कहते हैं।

उदाहरण-गोरी सेना सहित आता है, गोरी जब यह सुनती है
रण पराङ्मुख गोरी-पति हो, गोरी अनुनय करती है

पुनः—पृथ्वीराज यदि चंद, चंद तो चन्द्र प्रभा सम ठहरेगा।
चँद अमर यश रहेगा तब तक, चन्द गगन तल चमकेगा

पुनः—कवनि भांति बृजयुवनि जियब नित, मनमथ मनमथ जाते

पुनः—ऊँचे घोर मंदर के अन्दर रहन वारी,
ऊँचे घोर मंदर के अन्दर रहाती हैं॥

कंद मूल भोग करें कंद मूल भोग करें,
तीन बेर खातीं वे तो तीन बेर खाती हैं ॥
भूखन शिथिल अङ्ग भूखन शिथिल अङ्ग,
बिजन डोलातीं वे तो बिजन डोलाती हैं,
भूषन भनत शिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं वे तो नगन जड़ाती हैं ॥
(शिवा बावनी)

नोट— जब प्रथम और अन्तके वर्ण मिलते हैं। तथा कहीं कहीं पर प्रथम चरण के अन्त के जो वर्ण होते हैं दूसरेके आदि में वही होते हैं। इसी तरह दूसरे के अन्त के तीसरे के आदि में तथा तीसरे के अन्त के चौथे के आदि में तथा चौथे के अन्त में प्रथम के आदि के वर्ण होते हैं ऐसे यमक को मुक्तपदग्राह्य यमक कहते हैं।

४ वक्रोक्ति अलंकार।

जब कहने वाला कोई वाक्य किसी एक अर्थ में कहता है किंतु श्रोता काकु से या श्लेष से उसका दूसरा अर्थ ले लेता है वहां यह अलंकार माना जाता है।

१ काकुवक्रोक्ति जहां शब्द के उच्चारण में कंठ ध्वनि एक विशेष अर्थ का प्रतिपादन करे अर्थात् व्यंग आभासित हो वहां काकुक्रोक्ति होती है। इसका प्रयोग रौद्र रस वा हास्य रस पूर्ण वाद-विवाद में अधिकतर होता है।

यथा—कह अङ्गद सलज्ज जग माहीं ।
रावण तोहि समान कोई नाहीं ॥
धर्म शीलता तव जग जागी ।
पावा दरस हमहुं बड़भागी ।
पुनः—मैं सुकुमारि नाथ वन योगू ।
तुमहिं उचित तप मो कहँ भोगू ॥

२ श्लेष वक्रोक्ति (अ) अभंग पद श्लेष—जब शब्दों को न तोड़ते हुये उन शब्दोंका दूसरा अर्थ लिया जाय । यथाः-

को तुम हारि प्यारी ! कहा, वानर को पुर काम ।
श्याम, सलोनी ! श्याम कपि, क्यों न डरै तव वाम ॥

इसमें श्री कृष्ण और राधिका का परिहास वर्णित है। राधिका जी पूछती हैं । तुम कौन हो ? भगवान का उत्तर सुन कि मैं हरि हूं, राधिका जी कहती हैं कि ग्राम में (हरि=भगवान=बंदर) बंदर का क्या काम है । जब भगवान अपना श्याम नाम बतलाते हैं तो राधिका फिर कहती हैं कि अच्छा तुम श्याम कपि हो तो निश्चय तुम्हारी स्त्री तुम से डरती होगी ।

(ब) भंग पद—जब शब्द को तोड़ कर श्रोता दूसरा अर्थ लगावे यथा—"तमाखु पत्र राजेन्द्र, भजमा ज्ञान दायकम्" इसका सरल अर्थ तो यही है कि अज्ञानदायक तमाखु को मत खाओ । किन्तु कुछ लोग इससे भिन्न अर्थ करते हैं । वह इस प्रकार है । तमाखु=(तम=उसको+आखु=चूहा) पत्र=वाहन

भज=पहिले तम्बाकू अर्थ में खाओ किन्तु दूसरे अर्थ में भजो, स्मरण करो। मा=पहिले अर्थ में नहीं तथा दूसरे अर्थ में लक्ष्मी। अब दूसरा अर्थ इस प्रकार होगा। हे राजेन्द्र! जिनका वाहन मूषक है तथा जो लक्ष्मी यानी धन सम्पत्ति और ज्ञान के देने वाले हैं ऐसे गणेश जी का भजन करो।

५. विप्सालंकार

आश्चर्य, खेद, आदर तथा अन्य आकस्मिक भाव प्रकट करने के लिये जब एक शब्द का प्रयोग कई बार हो। वहां यह अलंकार होता है।

उदाहरण-राम जपु राम जपु राम जपु बावरे।

पुनः—राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुवर विरह, राव गये सुरधाम॥

६ श्लेषालंकार

जब शब्द केवल एक बार आता है किन्तु उसके अर्थ कई होते हैं वहां यह अलंकार होता है। यथार्थ में इसके दो भेद हैं। शब्दालंकारों में इसकी गणना तब की जायगी जहां कवि का अभिप्राय केवल १ अर्थ से हो। इसके अतिरिक्त जब कवि का अभिप्राय दोनों, तीनों या जितने अर्थ हो सकते हों उन सब से हो तब यह अर्थालंकार हो जाता है।

शब्दालंकार श्लेष का उदाहरणः—कैसो सुविलास हास देत जो उदासि आस, उरमे प्रकाश सुख और कोउ जानै

ना। कैसो हो वियोगप्रिय और ही दिखात भोग, होयगो संयोग पर क्योंहू जिय मानैना ॥ लागी है लगन आज केवल सुरति मांहि, और की सुकीरति पै मन मचलानै ना।

जाऊँ बलि सांवलि सुमूरति सलोनी मांहि,

जागी है विरति उर मन मोर मानै ना ॥

साधारणत: इसके एक ही अर्थ से कवि का अभिप्राय है। जिसमें किसी भक्त राज की श्री कृष्ण जी के प्रति भक्ति तथा प्रेम दशा का दिग्दर्शन है। अतएव इसमें श्लेष है किन्तु वास्तव में इसके जिन शब्दों के नीचे रेखायें खिची हुई हैं। वह दो अर्थी हैं। और कीचक की, द्रौपदी के लिये व्याकुलता का वर्णन है किन्तु जैसा ऊपर लिखा गया है, मुख्य अर्थ शान्त रस प्रधान है। अतएव शब्दालंकार ही माना जायेगा। अर्थालंकार गत श्लेष की विवेचना आगे अर्थालंकारों की विवेचना के साथ दिया जायेगा।

अर्थालंकार—१ उपमा।

अर्थालंकारों में उपमालंकार ही सर्वोत्तम तथा अनेक अलंकारों का मूल है। इससे इसकी विवेचना सर्व प्रथम की जायगी।

उपमा जब किसी वस्तु का पटतर किसी अन्य वस्तु से दी आवे वहाँ पर उपमालंकार होता है। जैसे—उसके हाथ कमल के समान कोमल हैं समता रूप रंग और गुण की

होती है। जिस वस्तु की प्रधानता हो या जिसकी समता दूसरी वस्तु से दी जाती है उसे उपमेय कहते हैं। जिस वस्तु से समता दी जाती है उसे उपमान कहते हैं। जिस गुण के लिये समता दी जाती है उस धर्म तथा जिस शब्द समता प्रकट की जाती है उसे वाचक कहते हैं। इसप्रकार उपमालंकार में उपमेय, उपमान, वाचक तथा धर्म चार वस्तुयें होती हैं।

इसके वाचकः—

सो, से, सी, इव , तूल, लौं, सम, समान पहिचान।
ज्यों, जैसे, इमि, सरिस, जिमि, उपमा वाचक जान॥

इनके अतिरिक्त 'रंग' नाई, न्याय और मतिन, भी कहीं २ वाचक होते हैं।

पूर्णोपमा

जब उपमा की चारों वस्तुयें उपमा में विद्यमान हों वहां पूर्णोपमालंकार होता है। यथाः—

राम लखन सीता सहित, सोहत पर्ण निकेत।
जिम बासव बस अमर पुर, शची जयन्त समेत॥

इसमें राम लखन सीता उपमेय, इन्द्र (वासव) जयन्त और शची उपमान सोहत धर्म तथा जिमि वाचक है अर्थात् चारों प्रकट होने से पूर्णोपमा है। इसी तरह और भी समझ लेना चाहिये।

पुनः—सेवहिं लखन सीय रघुबीरहिं।
जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहिं॥
रामहिं लखन विलोकत कैसे।
शशहिं चकोर किशोरक जैसे॥

लुप्तोपमा

पूर्णोपमा में चार वस्तुयें होती हैं। इनमें से जहां किसी का लोप हो वहां लुप्तोपमालंकार होता है।

१ वाचक लुप्ता

जहां वाचक शब्द का लोप हो। यथा—

१ सरद मयंक वदन छवि सीधा।

२ नव अम्बुज अम्बक छवि नीकी॥

३ शरद विमल विधु वदन सुहावन।

४ नील सरोरुह श्याम, तरुण अरुण वारिज नयन।

इन उदाहरणों में सो, से, सम इत्यादि शब्दों का लोप किया गया है। इससे इसमें वाचक लुप्ता है।

२ धर्म लुप्ता

जहां साधारण धर्म का लोप हो। जैसे—

तुम सम पुरुष न मो सम नारी।

इसमें साधारण धर्म का लोप किया गया है। इससे यह धर्म लप्ता है इसकी भांति और लुप्ताओं में केवल नाम से ही परिभाषा जान लेना चाहिये।

३ उपमान लुप्ता

जहां उपमान का लोप हो। यथा--

सुन्दर नंद किशोर सों, जग में मिले न और।

इसमें उपमान का लोप है इससे यहाँ उपमान लुप्ता है।

४ उपमेय लुप्ता

जहां उपमेय का लोप हो। यथा:—

चँचल हैं ज्यों मीन, अरुणारे पंकज सरिस।

इस में नेत्र जो उपमेय है उसका लोप किया गया है। इससे उपमेय लुप्तालंकार है।

इसके अतिरिक्त और भी लुप्ता होते हैं जैसे वाचक धर्म लुप्ता, धर्मोपमेय लुप्ता, धर्मोपमान लुप्ता तथा वाचकोपमेय लुप्ता, वाचकोपमान लुप्ता में दो वस्तुओं का लोप होता है। इसके अतिरिक्त वाचक धर्म उपमान लुप्ता इत्यादि में तीन वस्तुयें लुप्त रहती हैं किन्तु विद्यार्थियों को जितना जानना आवश्यक है केवल वही लिखा गया है।

२ मालोपमा

जहां एक उपमेय के बहुत उपमान कहे जांय वहां मालोपमा होता है। इसके दो भेद होते हैं। (१) भिन्न धर्मा (२) एकधर्मा

१ भिन्न धर्मा मालोपमा

जहां पृथक २ धर्मों के हेतु अनेक उपमानों की उपमा एक उपमेय से दी जावे। यथा:—

तेज निधानन में रवि ज्यों, छविवंतन में विधु ज्यों छवि छाजै ॥
सैलन में ज्यों सुमेर लसै, वर वृक्षन में कलपद्रुम राजै ॥
देवन में मतिराम कहे, मघवा जिम सोहत सिद्ध समाजै ।
राउ छता सुत भाऊ दिवान, जहांन के राजन में इमि राजै ॥
पुनः—बंदौ खल जस सेस सरोषा, सहस बदन बरनै परदोषा ॥
पुन प्रणवौं पृथुराज समाना ।पर अघ सुनै सहस दस काना ॥
बहुरि शक्र सम विनवौं तेही । संतत सुरानीक हित जेही ॥
पुनः—सफरी से चंचल नयन, मृग से पीन सुपैन ।
कमल पत्र से चारु यह, राधा जू के नैन ॥

२ एक धर्ममालोपमा

जहां सब उपमानों का एक ही धर्म वर्णन किया जावे ।
यथाः-हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहिं, हरिहिं श्री सागर दई ।
तिमि जनक रामहिं सिय समर्पी, विश्व कल कीरति नई ॥

पुनः—बैनतेय बलि जिमि चह कागू ।
जिमि शशि चहै नाग अरि भागू ॥
जिमि चह कुशल अकारण कोही ।
सुख सम्पदा चहै शिव द्रोही ॥
लोभी लोलुप कीरति चहई ।
अकलंकिता कि कामी लहई ॥
हरिपद विमुख परम गति चाहा ।
तिमि तुम्हार लालच नरनाहा ॥

पुनः—इन्द्र जिमि जम्भ पर वाड़व सुअंभ पर।
रावण सदम्भ पर रघुकुल राज है॥
पौन वारिवाह पर शंभु रति नाह पर।
ज्यों सहस्त्र बाहु पर राम द्विजराज है॥
दावा द्रुम दंड पर चीता मृग झुन्ड पर।
भूषण वितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तिमिरंश पर कान्ह जिमि कंस पर॥
त्यों मलेच्छ वंश पर शेर सिवराज है॥

पुनः—जिमि भानु विन दिन।
प्रान विन तनु, चंद्र विनु जिम यामिनी॥
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु विन।
समुझि धौं जिय भामिनी॥

३ रसनोपमालंकार

उपमालंकारों की वह श्रृंखलाबद्ध श्रेणी रसनोपमालंकार कहलाता है जिसमें प्रथम कहा उपमेय उपमान होता जाता है। यथाः-

मति सी नति, नति सीविनति, विनती सी रति चारु।
रति सी गति, गति सी भगति, तो में पवनकुमारु॥

४ अनन्वयोपमा

जहां उपमेय की समता के उपमानके अभाव के कारण उपमेय ही उपमेय तथा उपमान दोनों का काम दे वहां अनन्वयोपमा होता है। यथाः—

१ लही न कतहुंहारि हिय मानी, इन सम ये उपमा उर आनी।
२ उपमान कोउ कहु दास तुलसी, कतहुं कवि कोविद कहैं॥
बल विनय विद्या शील शोभा-सिंधु इन सम ये अहैं॥
३ स्वामी गुसाइंहि सरिस गुसाईं, मोहिं समान मैं स्वामि दोहाई
४ राम सों राम, सियासी सिया सिरमौर विरंचि विचारि संवारे

५. उपमेयोपमा

जहां उपमेय के लिये केवल एक ही उपमान हो। तीसरी समता की वस्तु न हो। यथा:—

(१) वे तुम सम तुम उन सम स्वामी।
(२) भूपर भाऊ भुवप्पतिको मन सो कर औ करसो मनऊंचो
(३) अंवर गंगसी है सरजू, सरजू सम गंग कृशानभ साजै॥
यों लछिराम सुदेव से सेवक, सेवक से सुभ देव समाजै॥
सोहै सुरेश सों राम नरेश, सुरेशहुं राम नरेश सो राजै।
औधपुरी अमरावति सी, अमरावति औधपुरी सी विराजै॥

६—ललितोपमा

जहां उपमेय तथा उपमान की समानता जताने के लिये उपमा के वाचक शब्दों का प्रयोग न करके ऐसे पद लाये जाते हैं। जिन से उपमेय और उपमान में वरावरी, मुकाविला मित्रता, ईर्षा इत्यादि सूचक भाव प्रकट होवें।

वाचक—बहसत, निदरत, हंसत अरु, छवि अनुहरत बखानि।
शत्रु, मित्र अरु होड़कर, लीलादिक पद जान ॥
(अलंकार मंजूषा)

यथा—

उत श्याम घटा इत हैं अलकैं बकपाँति उतै इति मोती लरी।
उत दामिन दंत चमंक इतै, उत चाप इतै भ्रुव बंक धरी ॥
उत चातक तो पिउ पीउ रटै, बिसरे न इतै पिउ एक घरी।
उत बुंद अखंड इतै अँसुआ, बरसा बिरहानि तें होड़ परी ॥

२—ऐसे ऊंचो दुरग महाबली को जामें नखतावली सों बहस दीपावलि करति है। (भूषण)

३—सुनहु आलि परदेश को, प्रान पिया कर गौन।
हिय में पौ में होड़ है, पहिले फाटत कौन ॥

४—निदरि पवन जनु चहत उड़ाने।

५—तब सुमन्त दुइ स्यन्दन साजी।
जोते हय रवि निदरक बाजी ॥

७ रूपक

लक्षण—जब किसी वस्तु रूप के समान किसी और वस्तु का रूप बनाया या वर्णन किया जाय। या पूर्णोपमालंकार में से वाचक और धर्म को मिटाकर उपमेय पर ही उपमान का आरोप करें अर्थात् उपमेय तथा उपमान को एक ही मान ले। यही रूपक अलंकार होगा।

भेद—मुख्य भेद २ हैं। १-तद्रूप २-अभेद। फिर प्रत्येक के ३ भेद हैं। हीन, सम तथा अधिक।

१ तद्रूप रूपक

लक्षण जहां उपमान को उपमेय करके वर्णन करे वहां तद्रूप रूपक है। इसके वाचक बहुधा, अपर, दूसरा, अन्य इत्यादि शब्द होते हैं।

अधिक तद्रूप रूपक—जब उपमेय में उपमान से बढ़कर कुछ गुण हों।

यथाः—जस भुज या धुजते अधिक, तीन लोक फहरात।
धर्म मित्र यह मित्रते, मरत जियत सँग जात॥

यहां यश को ध्वजा तथा धर्म को मित्र करके वर्णन किया है परन्तु यश रूपी ध्वजा में यह विशेषता है कि वह तीनों लोकों में फहराती है। तथा धर्म मित्र में यह विशेषता है कि वह मृत्यु परान्त भी साथ देता है।

हीन तद्रूप रूपक

बरवा-दुइ भुज के हरि रघुवर सुन्दर भेस।
एक जीभ के लछमण दूसर सेस॥

यहां श्रीराम जी के दोही भुजायें हैं परन्तु चतुर्भुज विष्णु भगवान बनाया है,। तथा एक जिह्वा वाले श्री लक्ष्मण जी को दो सहस्र जिह्वा वाला शेष नाग बनाया है अर्थात् उपमेय में उपमान से कुछ गुण कम होने पर भी एक रूप ठहराया जाता है।

समतद्रूप रूपक

जब उपमेय तथा उपमान समान गुण होने पर एक रूप वर्णन किये जायें।

यथाः—

छांह करैं छित मंडल को सब ऊपर यों मतिराम ठये हैं।
पानिप को सर सावत हैं सिगरे जगके मिटि ताप गये हैं॥
भूमि पुरन्दर भाऊ के हाथ, पयोदन ही सुकाज भये हैं।

इसमें मतिराम ने भाऊसिंह भूपाल के हाथों को बादल रूप वर्णन करते हुए दोनों के गुणों की समानता प्रदर्शित की है। इससे यह समतद्रूप रूपक है।

पुनः—तू सुन्दरि शचि दूसरी, यह दूजो सुरराज।

२ अभेद रूपक

उपमेय तथा उपमान का ऐसा वर्णन जिसमें भेद न हो अभेद रूपक कहलाता है। (तद्रूप रूपकमें अपर, अन्य अथवा भिन्नता सूचक शब्द कहकर केवल तद्रूपता वर्णन की जातीहै किन्तु वह दोनों एक नहीं माने जाते किन्तु अभेद रूपक में उपमान तथा उपमेय में कुछ अन्तर नहीं होता अर्थात् उपमान को उपमेय का ठीक रूप ही मानकर वर्णन करते हैं। यही तद्रूप तथा अभेद रूपक में अन्तर है।

अधिक अभेद रूपक

जहां उपमेय में उपमान से कुछ अधिक गुण होते हुए भी एक रूप मानकर वर्णन किया जाय या एक ही दोनों माने जायें। यथा:—

जंग में अङ्ग कठोर महा, मदनीर झरै झरना सरसे हैं।
झूलन रंग बने मतिराम, महीरुह फूल प्रभान लसे हैं॥
सुन्दर सिंदुर मंडित कुम्भन गैरिक शृङ्ग उतंग लसे हैं।
भाऊ दिवान उदार अपार सजीव पहार करी बकसे हैं॥

यहां हाथी को पर्वत माना है परन्तु इतना अधिक वर्णन किया है कि ये हाथी सजीव पहाड़ हैं। पर्वत निर्जीव वस्तु है।

पुनः—नव विधु विमल तात यश तोरा।
रघुवर किंकर कुमुद चकोरा॥
उदित सदा अथइहि कबहूँना।
घटहिं न नभ जग दिन दिन दूना॥

यहां भरत जी के यश को चन्द्र माना है परन्तु इतनी अधिकता है कि कलंक रहित है। अस्त न होने वाला, सर्वदा उदित; कभी न घटने वाला और प्रतिदिन बढ़ने वाला है। यहां अधिक अभेद रूपक है।

हीन अभेद रूपक

जब उपमेय में उपमान से कुछ कमी होते हुए भी एक रूपता स्थापित की जाय। यथा:—

महादानि याचकन को, भाऊ देत तुरंग।
पच्छन विगर विहंग हैं, सुंड विहीन मतंग॥

यहां पर तुरंग को पक्षी रूप में वर्णन किया है परन्तु कमी यही है कि पंख नहीं हैं। फिर मतंग रूप में कहा किन्तु सूंड़ नहीं है किन्तु पंख रहित होते हुए भी वह पक्षि के समान तथा सूंड़ रहित होते हुए भी मतंग हैं।

सम अभेद रूपक

जब उपमेय तथा उपमान में गुणों की समानता होते हुए एकरूपता वर्णन की जावे। यथा:—

१ नारि कुमुदिनी अवध सर, रघुवर विरह दिनेस।
अस्त भये विकसित भई, निरख राम राकेस॥

२ राम कथा सुन्दर करतारी। संसय विहँग उड़ावन हारी॥

वर्णन प्रणाली के अनुसार इन्हीं सब रूपकों के केवल तीन भेद कहे जा सकते हैं अर्थात् (१) सांग (२) निरंग (३) परंपरित

सांग या सावयव रूपक

लक्षण—सांग रूपक वह रूपक है जिसमें कवि उपमान के समस्त अंगों का आरोप उपमेय में करता है। यथा—

अस कह कुटिल भई उठ ठाढ़ी। मानहु रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रकट भै सोई। भरी क्रोध जल जाय न जोई ॥
दोऊ वर कूल, कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी वचन प्रचारा ॥
ढाहति भूप रूप तरु मूला। चली विपति वारिधि अनुकूला ॥

इसमें प्रथम चौपाई अर्द्ध को छोड़ शेष में नदी का रूपक बांधा गया है। बालकांड में मानस का रूपक बहुत उत्तम है। उसी प्रकार लंका कांड में विजय रथ का तथा उत्तर में ज्ञान-दीपक का सांग रूपक बहुत श्रेष्ठ है सांग रूपक दो प्रकार का होता है (१) समस्त वस्तु विषयक (२) एक देश विवर्तित।

१ समस्त वस्तु विषयक का उदाहरण ऊपर लिखा जा चुका है।

पुनः—उदित उदय गिरि मंच पर, रघुवर बाल पतंग।
विकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग ॥
नृपन केरि आशा निशि नाशी। वचन नखत अवली न प्रकासी।
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने ॥
भये विशोक कोक मुनि देवा। वर्षहिं सुमन जनावहिं सेवा ॥
पुन-भुवन चारिदश भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख भारी
रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमँग अवध अंबुधि कहं धाई
मणि गण पुर नर नारि सुजाती। शुचि अमोल सुँदर सब भांती

२ एक देश विवर्तित वह रूपक है जिसमें कुछ अंगों का वर्णन हो कुछ का नहीं। यथा—

नाम पहरुवा दिवस निशि, ध्यान तुम्हार कपाट।

लोचन निज पद यंत्रका, प्राण जाँय केहि बाट॥

इसमें प्राण का रूपक जो कैदी होना चाहिये-वर्णन नहीं किया गया। इससे समस्त वस्तु न होकर एक देश विवर्तित रूपक है।

२ निरंग रूपक

वह रूपक है जिस में केवल उपमान के प्रधान गुण का आरोप उपमेय पर किया जाता है। यथा-

देश निवासी चक प्रमुदित कर तन जात्यर्थ विनासे।

यहां देश निवासियों को चकवाक् मानलिया है किन्तु उसके और अंगों का वर्णन नहीं किया। इसी प्रकार और भी जनो।

पुनः-अवगाढ़ सोक समुद्र सोचहिं नारि नर व्याकुल महा

इसमें शोक को समुद्र बनाया है किन्तु समस्त अङ्गों का वर्णन नहीं किया।

३ परंपरित रूपक

लक्षण—परंपरित रूपक वह कहलाता है जहां मुख्य रूपक का हेतु एक और ही रूपक होता है। यथा—

जय रघुवंश वनज वन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृशानू॥
जय सुर विप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रम हारी॥
विनयशील करुणागुण सागर। जयति वचन रचनाअति आगर॥
सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय शरीरछबि कोटि अनंगा॥

८— उल्लेख

ण-- किसी कारणवश एक ही व्यक्ति का बहुत प्रकार
वर्णन करना उल्लेख कहलाता है। इसके दो भेद हैं।
१- एक ही व्यक्ति को भिन्न २ व्यक्ति भिन्न२ प्रकार से
न करें या माने। यथा:—

के रही भवना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ॥
हिं भूप महारण धीरा। मनहु वीर रस धरे शरीरा ॥
कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी। मनहु भयानक मूरति भरी ॥
असुर छल छोनिप भेषा। तिन प्रभु प्रकट काल सम लेखा ॥
ासिन देखे दोऊ भाई। नर भूषण लोचन सखदाई ॥
ुपन प्रभु विराट मय दीखा। वहु मुख करपग लोचन शीसा ॥
ोन परम तत्व मयभासा। साँत शुद्ध मन सहज प्रकासा ॥
: भगतन देखे दोऊ भ्राता। इष्टदेव सम सब सुख दाता ॥
क जात अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे ॥
हित विदेह विलोकहिं रानी। शिशु समप्रीति न जाय बखानी ॥
ाहिं चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहिं कथनीया ॥
: विधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देख्यो कोसल राऊ ॥

२-एक ही व्यक्ति एक व्यक्ति को वहुविधि वर्णन करे। यथा-

वै-- सब गुन भरा ठकुरवा मोर। अपने ठाकुर अपनै चोर ॥

:--सारमाला सत्य की विचारमाला वेदन की, भारी भाग-

माला है भागीरथ नरेश की। तपमाला जन्हु की सुजप-माला जोगिन की, आछी आपमाला है अनादि ब्रह्मवेश की॥ कहै पदमाकर प्रमाणमाला पुन्यन की गंगाजू की धारा मानमाला है धनेश की। ज्ञानमाला गुरु की गुमान माला ज्ञानिन की, ध्यानमाला ध्रुव की मौलि माला है महेश की॥

६ स्मरणालंकार

लक्षण-कुछ देखकर, कुछ सुनकर, कुछ सोचकर, किसी स्वप्न को देख कर किसी का स्मरण हो आवे वहां यह अलंकार होता है।

१-कछु देखकर—तन अनुहर घन नील विलोकत,
श्यामसुँदर सुधि आवै॥

पुनः—प्राची दिस शशि उगेउ सुहावा।
सिय मुख सरिस देख सुख पावा॥

पुनः—बीच वास कर यमुनहि आये।
निरखि नीर लोचन जल छाये॥

पुनः—रघुवर वरण विलोक वर, वारि समेत समाज।
होत विरह वारिध मगन, चढ़े विवेक जहाज॥

२-सम्बन्धी वस्त देखकर—

सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर॥

३- स्वप्न देखकर—जाग परी तो न कान्ह कहूँ,
न कदंब की छाँह नहीं जमुना तट॥

४. कुछ सुनकर—रट पापी पपिहा पिय पिय सुनि,

प्रिय प्रियतम सुधि आवे ।

कवन भांति ब्रज युवति जियव नित,

मन्मथ मन मथ जावे ॥

पुनः—रहि रहि दहत कठोर मोर मन, सुनत मोर गन शोरा ।

पिय बिन यह संसार सार गत, यक रस रजनी भोरा ॥

[चर्चा व कथा सुनकर]

कृष्ण जी को सुलाते समय यशोदा जी ने विधि वशात् रामावतार की कथा कहना आरम्भ किया। सीताहरण सुन पूर्वजन्म की स्मृति आने पर बालकृष्ण चौंक कर कहने लगे लक्ष्मण ! मेरा धनुष बाण लाओ।

कह्यो जानकी केर हरण जब। 'कहँ धनुशर' कहि कृष्ण उठे तब

३ सोचि कर-कुछ सोच, कुछ समझकर तथा कुछ चितवन से किसी की याद आवै। यथा—

और ब्राह्मणन देख करत सुदामा सुधि मोहि देखि काहे सुधि भृगु की करत हो (भूषण)

विधर्मी वस्तु देख

थूहर पलास देखि देखि कै बबूर बुरे हाय हरे हरे वे तमाल सुधि आवे है। (नागरीदास)

१० भ्रान्ति [भ्रम] अलंकार

लक्षण—भ्रम से किसी और वस्तु को कोई और वस्तु मान लेना भ्रमालंकार है।

यथा—कपि कर हृदय विचारि, दीन मुद्रिका डारि तब।
जानि अशोक अँगार, सीय हरषि उठिकर गह्यो॥
(यहां जानकीजी मुद्रिका को अशोक प्रदत्त अंगारा समझती हैं)

पुनः—पांय महावर देन को, नाइन बैठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी, एड़ी मींडत जाय॥

पुनः—री सखि! मोहि बचाय, या मतवारे भ्रमर सों।
डसो चहत मुख आय, भरम भरो बारिज गुने॥

११ सन्देह

लक्षण—किसी वस्तु को देखकर संशय बना ही रहे समाधान न हो। (भ्रांति में एक वस्तु के स्थान में दूसरी वस्तु मान-ली जाती है किन्तु संदेह में किसी वस्तु पर जी नहीं जमता।) वाचक—की, किधौं, कीधौं, कि, या इत्यादि संदेह सूचक शब्द हैं। उदाहरण—

की तुम तीन देव मंह कोऊ। नर नारायण की तुम दोऊ॥
की तुम हरिदासन महं कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम राम दीन अनुरागी। आये मोंहि करन बड़ भागी॥

पुनः—
कहहु नाथ सुन्दर दोऊ बालक। नृपकुलतिलक कि मुनि कुलपालक
निगम जो नेति नेति कह गावा। उभय वेष धरि सोइ कि आवा॥

पुनः- सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है कि सारी
हीकी नारी है कि नारी ही की सारी है।

पुनः— कैधों रतिनायक के शायक करारे कैधों-देवराज धर्म-राज शस्त्र चिनगारे हैं। कारे विषधारे कैधों दंत विषधारे कैधों देवी महा काली के दुधारे की ये धारें हैं ॥ अमृत हलाहल प्रेम मद में बुझाई कैधों, तीखे नोक वारे काऊछलिया के कटारे हैं। चाव से अभाव से 'सुधाकर' लखें मारे तऊ, पैने मदधारे कैधों नैना रतनारे हैं ॥

१२-अपन्हुति

किसी बात को छिपाकर किसी अन्य वस्तु या बात से संतोष कर देना अपन्हुति अलंकार है। इसके ६ भेद होते हैं।

१ २ ३ ४ ५ ६

दोहा—शुद्ध, हेतु, परजस्त, भ्रम, छेका, कैतव देख।
'ना' वाचक है पांच को, कैतव को 'मिस' लेख।

(अलंकार मंजूषा)

१ शुद्धापन्हुति

लक्षणः— उपमेय को असत्य ठहरा कर उपमान का स्थापन किया जावे, अर्थात् सत्य को छिपाकर असत्य बात कही जाय—यथाः— उदाहरणः-

मैं जु कहा रघुवीर कृपाला। बंधुनहोय मोर यह काला ॥
पुनः-गौर शरीर श्याम मनमाहीं। कालकूट मुख पयमुख नाहीं॥
पुनः—अनरथ को मूल शूलदायी कलंक नाहिं, ,
सारे अंक हूदै भस्म लेपन सुधार्‌यो है ॥

पुनः—सोई यह भस्म रेख लखियत हृदै माहिं,
नाहिं यह कलंक जो दीखत है इन्दु में ॥

इन उदाहरणों में सत्य को छिपाकर असत्य का स्थापन किया गया है।

२ हेत्वापन्हुति

लक्षण—शुद्धापन्हुति में जब कारण भी बतलाया जावे तो हेत्वापन्हुतिअलंकार होता है यथा—

पूरी हैं सबला, नहिं अबला, अस्त्र बांधे तीन,
पीनकुच मान औ अमोघ नैन तीर हैं।

इसमें स्त्रियों को, जो यथार्थ में अबला हैं, सबला बतलाते हुए तथा कारणों से पुष्टि करते हुए सच्चे अबलापन को छिपाया गया है। यदि केवल यही कहा जाता, कि ये अबला नहीं सबला हैं तो शुद्धापन्हुति होती।

३ पर्यस्तापन्हुति

लक्षण—किसी वस्तुमें उसके धर्मका निषेध इसलिये किया जाय कि वह धर्म किसी दूसरी वस्तु में आरोपित करना है। यथा—

उदाहरण—है न सुधा यह, है सुधा—संगति साधु समाज।

यहां सुधा का अमरत्व इसलिये छिपाया गया कि उसका स्थापन साधु संगति में करना है।

पुनः— नहीं शक्र सुरपति अहै, सुरपति नन्द कुमार।
रतनाकर सागर न है, मथुरा नगर बजार॥

पुनः— कालकूट विष नाहिं, विष है केवल इंदिरा।
हर जागत छकि वाहि, यह सँग हरि नींद न तजत॥
(अ० मं०)

इसमें प्रायः देखा जाता है कि जिस वस्तु के सच्चे धर्म को छिपाना होता है उसका प्रयोग दो बार होता है।

४ भ्रांत्यापन्हुति

लक्षण— किसी कारण कोई शंका उत्पन्न हो जाये तो सत्य बात से उसका निवारण करदे। यथा—

उदाहरण—

कह प्रभु हंसि जनि हृदय डराहू। लूक न अशनि न केतु न राहू॥
ये किरीटि दसकंधर केरे। आवत बालि तनय के प्रेरे॥

५ छेका पन्हुति

लक्षण—यह भ्रान्तापन्हुति का ठीक विरोधी है इसमें असत्य कह कर शंका दूर करने की चेष्टा की जाती है किन्तु प्रथम में सत्य से दूर की जाती है। दूसरे में असत्य से चाहे वह दूर हो या न हो। यथाः—

कुछ न परीक्षा लीन गुसाईं। कीन प्रणाम तुम्हारहिं नाईं॥

६ कैतवापन्हुति

मिस व्याजादिक शब्दों का प्रयोग करके अन्य को अन्य (दूसरी वस्तु को दूसरी ही वर्णन करना कैतवापन्हुति है यथा—

१—सिय मुख छवि विधु व्याज बखानी।
गुरु पहं चले निशा बड़ि जानी॥
२—कह ऋषि वधू सरल मृदु बानी।
नारि धर्म कछु व्याज बखानी॥
३—पड़े मोह मिस खगपति तोंही।
रघुपति दीन बड़ाई मोंही॥
४—लखी नरेश बात सब सांची।
तिय मिस मीच शीश पर नाची॥

१३—उत्प्रेक्षा

इस अलंकार का मुख्य अभिप्राय किसी उपमेय का कोई उपमान कल्पना शक्ति द्वारा कल्पित करना है। इस के वाचक मनु, जनु, मानो, जानो, निश्चय प्राय, बहुधा, खलु, इव इत्यादि शब्द हैं। इसके ३ मुख्य भेद हैं (१) वस्तूत्प्रेक्षा (२) हेतूत्प्रेक्षा (३) फलोत्प्रेक्षा।

१ वस्तूत्प्रेक्षा

लक्षण— किसी वस्तु के अनुरूप बल पूर्वक कोई उपमान कल्पित किया जाय। चाहे विषय पहिले कह कर उत्प्रेक्षा की जाय चाहे उत्प्रेक्षा का विषय न कह कर केवल उत्प्रेक्षा की जाय। इन्हीं को उक्त विषया (२) अनुक्त विषया कहते हैं।

उक्त विषया का उदाहरण।

जाय लखेउ रघुवंश मणि, नरपति निपट कुसाज।
सहम परेउ लख सिंहनहि, मनहुँ वृद्ध गजराज॥

पुनः—लता भवन ते प्रकट भे, तेहि अवसर दोउ भाय।
निकसे जनु जुग विमल विधु, जलद पटल बिलगाय॥

इन उदाहरणों में उत्प्रेक्षा के विषय पहिले कह दिये गये हैं तब उत्प्रेक्षायें की गई हैं। इसलिए उदाहरण उक्त विषया के हैं।

अनुक्त विषया का उदाहरणः—जब उत्प्रेक्षा का विषय न कहा जाय केवल उत्प्रेक्षा की जाय यथा—

नाना भांति न जाय बखाने। निदरि पवन जनु चहत उड़ाने॥

इसमें श्रीराम जी की बरात के घोड़ों का वर्णन है। उनकी तेज़ी का वर्णन करते हुये गोसाईं जी कहते हैं मानो वे पवन देव का निरादर करके उड़ना चाहते हैं अर्थात् चलने में बहुत तेज़ हैं किन्तु इस गति का नाम भी नहीं लिया गया जो उत्प्रेक्षा का मुख्य विषय है। इसी प्रकार और भी जानो।

[हेतूत्प्रेक्षा]

अहेतु को हेतु मानकर उत्प्रेक्षा की जाय। इसके भी दो भेद हैं। १—सिद्धास्पद—जहां उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध हो।

२—असिद्धास्पद-जहां आधार सिद्ध न हो। (असंभव आधार हो)

[सिद्धास्पद]

उ०-मनो कठिन आंगन चली ताते राते पाँय। (अ० मं०)

सुकुमार स्त्रियोंके चरणों में ललाई स्वाभाविक गुण है परन्तु कवि का वर्णन है कि मानों कठिन आंगन में चलने से ललाई आ गई है (स्त्रियों का आंगन में चलना स्वाभाविक है यह सिद्ध आधार है और उ में हेतु की कल्पना की गई है।)

असिद्धास्पद

उ०१-लख थिरकत शशिबिम्ब जल, जनि सखि झिझक सशंक।
वदन निरखि कंपति वदन, तव पद गहत मयंक ॥

२-पूस दिनन में ह्वै रहो, अगिनि कोन में भान।
मैं जानौं जाड़ो बली, ते यह डरै निदान ॥ (अ० मं०)

सूर्य का जाड़े से डरना असिद्ध आधार है। और डरके कारण सूर्य अग्नि कोण पूस में (तापने के हेतु) जाता है ठीक कारण नहीं है।

१ उदाहरण में चन्द्र का काँपना जल में स्वाभाविक है किन्तु उसका हेतु चन्द्रानना के मुखचन्द्र को देख भय से काँपना कहा गया है जो असिद्ध आधार है। इस से यह असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा है। यद्यपि इसमें वाचक का लोप है। ऐसी उत्प्रेक्षाओं को गम्योत्प्रेक्षा, गुप्तोत्प्रेक्षा व ललितोत्प्रेक्षा भी कहते हैं।

पुनः—उपमा हरि तन देख लजाने।

कोऊ जल में कोऊ वनहिं रहे दुर, कोऊ गगन उड़ाने ॥
मुख देखत शशि गयो अम्बर को, तड़ित दसन छवि हेरो
मीन कमल कर चरन नयन डर जल में कियो बसेरो ॥
भुजा देख अहिराज लजाने विवरनि पैठे धाय ।
कटि निरखत केहरि डरि मानो वन विच रहो दुराय ॥

फलोत्प्रेक्षा

अफल को फल मानने की उत्प्रेक्षा करना फलोत्प्रेक्षा है यह भी दो प्रकार का होता है ।

१-सिद्धास्पद, २-असिद्धास्पद । (परिभाषा हेतूत्प्रेक्षा में देखो)

१ **सिद्धास्पद** मधुप निकारन के लिये, मानो रुके निहारि
दिनकर निज कर देत है, सतदल दलन उघारि
(अ० मं०)

सूर्योदय से कमलों का खिलना सिद्ध आधार है । परन्तु कवि कल्पना करता है कि मानो रात भर बन्द रहे भौंरों को बन्द से छुड़ाने के लिये सूर्य कमल को अपनी किरणों से खोल देता है । सूर्य का कमलों को खिलाना इस हेतु नहीं होता कि उसमें बन्द हुए भौंरे बन्द से छूट जावें वरन् वह स्वयं सिद्ध विषय है भौंरों का बंद से छूटना यह अफल है उसे ही फल कल्पित किया गया है । अतः फलोत्प्रेक्षा है ।

असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा

१ तो पद समताको कमल, जल सेवत इक पांय । (अ० मं०)

कमल जल में स्वतः रहता है। राधिका जी के चरणों की समता रूपी फल प्राप्ति के लिये नहीं। जड़ कमल में समता की इच्छा का होना असिद्ध आधार है। इसलिये यह असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा है।

१४ अतिशयोक्ति

जहां किसी की अतिशय प्रशंसा करना मंजूर हो ऐसे स्थान में अतिशयोक्ति होती है इसके ६ भेद हैं १-भेदक २-संबंध ३-चपला ४-अक्रम ५-रूपक ६-अत्यन्त।

१ भेदकातिशयोक्ति

'और' 'और' शब्द इसके वाचक होते हैं। यथा—

१ अनियारे दीरघ नयन, किती न नारि समान।
वह चितवन कुछ और है, जेहि बस होत सुजान॥

२ औरे हँसन विलोकिवो, औरे वचन उदार।
तुलसी ग्राम बधून के, देखे रह न सँभार॥

३ मंगलीक वदन विलास लछिराम औरे कलँगी मरोर मौर भाल सजवारे में। औरे आनि और बानि औरे चढ़ी सान भुज और धनुवान राम कर गजरारे में॥

(न्यारी रीति है, और ही बात है, अनोखी बात है इत्यादि शब्द भी इसके वाचक होते है। यथा—)

जगत को जैतवार जीत्यो अवरंगजेब न्यारी रीति भूतल निहारी शिवराज की॥ (भूषण)

२ सम्बन्धातिशयोक्ति

१ योग्य में अयोग्यता प्रगट करके प्रस्तुत की अतिशय बड़ाई करना (२) अयोग्य में किसी के सम्बन्ध से ऐसी योग्यता दिखलाना कि अतिशय बड़ाई प्रकट हो।

१ योग्य में अयोग्यता

श्रीरघुनाथ के हाथन साँमुहे कल्पलता सन्मान करै को।

कल्पलता सन्मान करने योग्य वस्तु है पर उसे अयोग्य ठहरा कर उसके सम्बन्ध से राम जी के हाथों की अतिशय उदारता प्रकट की गई है।

पुनः—अति सुन्दर लखि मुख सिय तेरो।
आदर हम न करें शशि केरो॥

यहां चन्द्र सम्मान के योग्य होने पर भी मुख की अत्यन्त सुन्दरता वर्णन करने के हेतु अनादर का पात्र ठहराया गया है

२ अयोग्य में योग्यता

१ फवि फहरैं अति उच्च निसाना।
जिन महँ अटकहिं विबुध बिमाना॥

नोट—इस अलंकार के प्रचलित उदाहरण बहुधा इस प्रकार के हैं कि इसका वर्णन शेष, शारदा भी नहीं कर सकते। वेद भी नेति नेति कहता है। यथाः—

१ जेहि वर बाजि राम असवारा। तेहि शारदौ न बरणै पारा

२ जो सुख भा सिय मातु मन, देख राम वर भेष ।
सो न सकहिं कहि कल्प शत, सहस शारदा शेष ॥

३ शारद श्रुति शेषा ऋषय अशेषा, जाकहं कोऊ नहिं जाना ।

३ चपलातिशयोक्ति

कारण के देखते ही, सुनते ही कार्य पूरा हो जाय । यथाः—

१ तब शिव तीसर नैन उघारा । चितवत काम भयो जरि छारा ॥

२ विमल कथा कर कीन्ह अरंभा । सुनत नसाहिं काम मद दंभा ॥

३ आयो २ सुनत ही, शिव सरजा तव नाम ।
वैरि नारि दृग जलन ते, बूड़ जात अरि ग्राम ॥

४ अक्रमातिशयोक्ति

जहां कार्य तथा कारण एक साथ ही हों । यथाः—

१ संधान्यौ प्रभु बिशिषकराला । उठी उदधिउर अन्तरज्वाला ॥

२ पांयन को जमुना उमहीं जल बाढ़ौ जबै बसुदेव गरे लौं ॥
हूँकत ही यदुनंदन के जमुना जी बहीं तरवा के तरे लौं ॥

३ भूषन असीसैं तोहि करत कासीसैं पुनि बानन के साथ छूटै
प्राण तुरकन के ।

४ यश प्रताप वीरता बड़ाई । नाक पिनाकहिं संग सिधाई ॥

५ टूटत ही धनु भयउ बिवाहू । सुर नर नाग बिदित सब काहू ॥
(साथ ही साथ, संग ही, एकै साथ-साथ इसके वाचक हैं)

५. रूपकातिशयोक्ति

जहां केवल उपमान कह कर उपमेयों का अर्थ समझा जाय। यथा:—

खंजन शुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रवीना॥
कुन्दकली दाड़िम दामिनी। शरद कमल शशि अहि भामिनी॥
वरुण पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रशंसा॥
श्रीफल कनक कदलि हर्षाहीं। नेक न शंक सकुच मन माहीं॥
सुनु जानकी तोहि बिन आजू। हर्ष सकल पाय जनु राजू॥

इसमें वर्णित उपमानों के वर्णन से यह अभिप्राय है कि समस्त उपर्युक्त उपमान तुम्हें देख लज्जित रहते थे किन्तु अब तुम्हारा हरण देखकर सभी प्रसन्न हो रहे हैं।

सूरदास जी का भी एक पद इस अलंकार का बहुत प्रसिद्ध है। यथा:—

अद्‌भुत एक अनूपम बाग।
युगल कमल पर गज क्रीड़ति हैं, तापर सिंह करत अनुराग॥
हरि पर सरवर सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज पराग।
रुचिर कपोत बसै ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग॥
फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव, तापर शुक पिक मृगमद काग॥
खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर, ता ऊपर इक मणिधर नाग॥

(इसमें राधिका जी के समस्त अङ्गों का वर्णन है)

६ अत्यन्तातिशयोक्ति

जहां कारण से प्रथम ही कार्य हो जाय। यथा:—

१-हनूमान की पूंछ में, लगन न पाई आग।
सारी लंका जरगई, गये निशाचर भाग॥
२-पद परवारि जल पान कर, आपु सहित परिवार।
पितर पार कर प्रभुहि पुनि, मुदित गयो लै पार॥
३-ग्राहग्रहीत गयंद मुख, कढ़न न पाई 'त्राहि'।
पहिलेही हरि आयके, निजकर उधर्यो ताहि॥

दीनता को डारि औ अधीनता विडारि डीह, दारिद को मारि तोरे द्वार आइयतु है। (भूषण)

१५ दृष्टान्त

दृष्टान्त में दो वाक्य हैं, उपमेय तथा दूसरा उपमान। दोनों के पृथक २ धर्म होते हैं। दोनों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव सा जान पड़ता है। अर्थात् एक प्रकार की समता सी जान पड़ती है। परन्तु वाचक विना यह दिखलाई जाती है। यथा:—

काटे पै कदली फरै, कोटि यतन कोउ सींच।
विनय न मान खगेश सुन, डाटेहिं पै नव नीच॥

यहाँ कदली वृक्ष और नीच पुरुष की एकता प्रकट करने का भाव है इसलिये यह दृष्टान्त है।

१६ उदाहरण

कोई साधारण बात कहकर 'ज्यों जैसे, त्यों तैसे, इत्यादि

वाचक शब्दों द्वारा किसी विशेष बात से समता दिखलाई जाती है। वहां उदाहरण अलंकार होता है। दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास में वाचक नहीं होते किन्तु इसके वाचक ज्यों जैसे और त्यों तैसे हैं।

१ कैसे निबहै निबल जन, कर सबलन सों बैर।
जैसे बस सागर विसै, करत मगर सों बैर॥

२ अनरसहू रस पाइये, रसिक रसीली पास।
जैसे सांठे के कठिन, गांठों भरी मिठास॥

१७ अर्थान्तरन्यास

जहां एक बात का अन्य बात कह कर समर्थन किया जाये चाहे वह विशेष हो या साधारण। वहां अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। यथाः—

२–टेढ़ जानि शंका सब काहू। वक्र चन्द्रमहि ग्रसै न राहू॥

२–कारण ते कारज कठिन, होय दोष नहिं मोर।
कुलिश अस्थि ते उपलते, लोह कराल कठोर॥

३–बड़े न हूजै गुणन बिन, विरद बड़ाई पाय।
कनक धतूरे सों कहत, गहनो गढ़ो न जाय॥

१८–विरोधभास

जहाँ विरोधी पदार्थों का वर्णन किया जाय। यथाः—

बन्दहु मुनि पद कंज, रामायण जेहि निर्मयउ।
सखर सुकोमल मंजु, दोष रहित दूषण सहित॥

२-चरण कमल बन्दौ हरि राई ।

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अँधेको सब कुछ दिखराई ॥

बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई ॥

सूरदास स्वामी करुणामय, बार २ बन्दौ तेहि पाई ।

पुनः—मूकं करोति वाचालं, पंगं लंघयते गिरिम् ।

यत्कृपा तमहं वन्दे, परमानन्द माधवम् ॥

पुनः—भरद्वाज मुनि जाहि जब, होत विधाता बाम ।

धूर मेरु सम जनक जम, ताहि ब्याल सम दाम ॥

पुनः—तृण से कुलिस कुलिस तृण करई ।

पुनः—गरल सुधा रिपु करै मिताई ।

गोपद सिन्धु अनल सितलाई ॥

गरुअ समेर रेण सम ताही ।

राम कृपा कर चितवहि जाही ॥

पुनः—सो अज भगति प्रेम बश, कौशिल्या की गोद ।

पुनः—तंत्री नाद कवित्तरस, सुरिस राग रति रंग ।

अनबूड़े बूड़े तरे, जे बूड़े सब अंग ॥

१६—श्लेष

ऐसे शब्दों का प्रयोग, जिनके दो तीन अर्थ हो सकते हैं, जिस काव्य में होता है उसमें श्लेषालंकार होता है। किन्तु जब कवि का मुख्य तात्पर्य एक ही अर्थ से होता है तब इसकी गणना शब्दालंकारों में करनी चाहिये। परन्तु जब

कवि का तात्पर्य सभी अर्थों से जितने हो सकते हों, हो तो इसे अर्थालंकार समझना चाहिए। शब्दालंकार अन्तर्गत श्लेष के उदाहरण लिखे जा चुके हैं। अब अर्थालंकार श्लेष के उदाहरण लिखे जायँगे।

१ सत्यासक्त दयालु द्विज-प्रिय, अघहर सुखकंद।
जन हित कमला तजन जय, शिव, नृप, कवि हरिचन्द ॥
(सत्य हरिश्चन्द्र नाटक)

इसमें प्रयुक्त शब्दों के ५ अर्थ होते हैं १-कवि भारतेन्दु (२) राजा हरिश्चन्द्र (३) विष्णुभगवान (४) चन्द्रदेव तथा (५) शिव। अतएव यह अर्थालंकार है।

२-कनक विभूति विराग प्रिय, सारंगभृत गोपाल।
जय द्विजपति-हितु पार्थ हर, हरि सुरपति 'गोपाल' ॥
(किरातार्जुन नाटक)

इसमें प्रयुक्त शब्दों के पांच २ अर्थ हैं। १-अर्जुन (२) महादेव (३) कृष्णजी (४) इन्द्र (५) गोपाल अर्थात् इस पुस्तक का लेखक कवि। अतएव यह भी अर्थालंकार ही हैं। पाठक शब्दार्थों की विवेचना स्वयं करलें।

केशवदास कृत एक घनाक्षरी के तीन अर्थ हैं। यथा:—

कुँतल ललित नील भ्रकुटी धनुष नैन,
कुमुद कटाक्ष बाण सबल सदाई है।
सुग्रीव सहित तार अङ्गदादि भूषणन,
मध्यदेश केशरी सुगज गति भाई है ॥

विग्रहानुकूल सब लक्ष लक्ष ऋक्षबल,
ऋक्षराज मुखी मुख केशोदास गाई है।
रामचन्द्र जू की चमू राजश्री विभीषण की,
रावण की मीच दर कूच चलि आई है॥
(रामचन्द्रिका)

पुनः—ढाहति दिशितट अरिन तरु, भरत सिंधु सुख जाव।
तोषित कर मृग याचकन, सुयश- वारि दरयाव ॥१॥

दलित दिशान तट रिपु तम तोम,
यश जल भास छयो भूतल कविन्दु में।
छई सुख-शान्ति छिति कुमुद प्रजा समोद,
दुख कीच रह्यो चोर खल अरविन्दु में॥
दिपति समृद्धि-वृद्धि-राशि निशि प्रान्त आज,
मुदित सुजान सुचकोर दिक् वृन्द में,
सुगुण सजीव यों विराज दरियावचंद,
रहे गुण "मिश्र" जेते सुदर्यावचंद में॥

पुनः-न्याय को चाव भरो दरयाव, अथाह दया जल-राशि सदाई।
तोप सनाल लिये जलजात, सदा सत धार्मिक भाव उगाई॥
पत्र लसैं गुण रूप अनूप, कली धृति पुष्प विचार सुहाई।
काव्य सुधारस चूस पराग, अली जन मत्त सुकीरति गाई॥

इन पदों में प्रथम में दरयाव शब्द दो अर्थी है। नद तथा श्रीदरयावचन्द्र जू देव राजपुरुष विशेष। घनाक्षरी में तीन अर्थ हैं तथा अन्तिम पद प्रथम की तरह दो अर्थी हैं पाठक शब्दार्थों पर ध्यान दें। (सुधाकर कृत)

२०—विभावना

लक्षण—किसी घटना के कारण के सम्बन्ध में कोई विलक्षण कल्पना की जाये उसे 'विभावना' कहते हैं। इसके छः भेद हैं:—

(प्रथम)

कारण के अभाव ही में कार्य सिद्ध हो जाये। यथा:—

बिनु पद चले सुने बिनु काना। कर बिनु कर्म विधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु वाणी वकता बड़ योगी॥

(दूसरी)

अपूर्ण कारण के होते हुए भी कार्य पूरा हो। यथा—

१—काम कुसुम धनु सायक लीन्हे।
सकल भुवन अपने बस कीन्हे॥

२—मंत्र परम लघु जासु बस,
विधि हरि हर सुर सर्व।
महामत्त गजराज कहँ,
बस कर अंकुस खर्व॥

३—तीसों को शिवाजी जेहि दो सौ आदमी सों,
जीत्यो जंगसरदार सौ हजार असवार को॥

(तीसरी)

रुकावट के होते हुए भी कार्य पूर्ण हो जाये। यथा:—

रखवारे हति विपिन उजारा। देखत तोहिं अक्षय जेहि मारा॥

पुनः—नैना नेक न मानहीं, कितौं कहौं समुझाय।

ये मुंह जोर तुरंग लौं, एंचत हूँ चलि जाय॥

(चौथी)

जिसका जो कारण नहीं है उससे ही वह उत्पन्न हो। यथाः—

भयो तात निशिचर कुल भूषण।

(पांचवी)

विरुद्ध कारण के होते हुए भी जहां कार्य पूर्ण होजाये। यथाः-

क्यों न उतपात होय बैरिन के झुंडन में,

कारे घन उमड़ि अँगारे बरसत हैं।

(छठीं)

जहां कार्य से कारण की उत्पत्ति हो। यथाः—

और नदी नद से कोकनद होत,

तेरो कर कोकनद नदी नद प्रगटत है। (भूषण)

२१—परिसंख्यालंकार

जहां किसी वस्तु, धर्म, गुण व जाति को अन्य सब स्थानों से (जो उसके उपयुक्त माने जाते हैं) हटाकर तथा वर्जन करके किसी एक विशेष स्थान में ठहरावैं वहां परिसंख्या अलंकार होता है। यथाः—

१—दंड यतिन कर, भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।

जितय मनहिं अस सुनिय जग, रामचन्द्र के राज॥

यहां यह कहा गया है कि राज्य भर में किसी प्रकार का दंड (सज़ा) किसी को नहीं मिलता केवल नाम मात्र को दंड

(लाठी) संन्यासियों के हाथ में है। भेद नीति कहीं नहीं है, केवल नृत्यक समाज में सुर ताल राग इत्यादि का भेद है। उसी प्रकार जीतने को कोई नहीं रहगया, केवल मनको जीतने की इच्छा करते हैं। इसी प्रकार और भी समझना चाहिये। यथा:—

मूलन ही की जहां अधोगति केशव गाइय।
होम हुताशन धूम नगर एकै मलिनाइय॥
दुर्गति दुर्गन ही जो कुटिल गति सरितन ही में।
श्रीफल को अभिलाष प्रकट कवि कुल के जी में॥

उभयालंकार

एक से अधिक अलंकारों के सम्मिश्रण को उभयालंकार कहते हैं। इसके दो भेद हैं (१) संसृष्टि (२) संकर

१ संसृष्टि

जैसे तिल और तंडुल मिला देने पर भी अपने २ रंग से प्रत्यक्ष ही अलग २ देख पड़ते हैं, इसी प्रकार मिले हुए अलंकार अलग २ भासित हों तो वह संसृष्टि कहलाता है। यह तीन प्रकार का होता है, (१)-शब्द + शब्द (२) शब्द + अर्थ (३) अर्थ + अर्थ।

२ संकर

जब दूध तथा पानी की तरह दो अलंकार मिले होते हैं और मिलकर एक वर्ण हो जाते हैं। ऐसे सम्मिश्रण को संकर कहते हैं। ये पृथक न होने योग्य होते हैं।

संसृष्टि (शब्द+शब्द)

संपति सुमेर की कुबेर की जो पावै ताहि,
तुरत लुटावत विलम्ब उर धारै ना ।
कहै पद्माकर सुहेम हय हाथिन के,
हलके हजारन के वितर विचारै ना ॥
गंज गज बकस महीप रघुनाथ राव,
याही गज धोखे कहूँ काहू देय डारै ना ।
याही डर गिरिजा गजानन को गोय रही,
गिरि ते गरे ते निज गोद ते उतारै ना ॥

इसमें 'स' की दो बार आवृति से छेकानुप्रास, र की दो बार आवृति से छेकानुप्रास, ल की दो बार आवृत से छेकानुप्रास, ह की आवृति कई बार होने से वृत्यानुप्रयास, ब की आवृति दो बार होने से छेकानुप्रास, ग की आवृति दो बार अतएव छेकानुप्रास, 'र' व 'क' की आवृति दो बार से छेकानुप्रास तथा ग की आवृति कई बार होने से पुनः वृत्यनुप्रास है अतएव यह शब्द + शब्द संसृष्टि है ॥

(शब्द+अर्थ)

बहुरि कहौं जस छवि मन बसई ।
जनु मधु मदन मध्य रति लसई ॥

ब की आवृति दो बार से छेकानुप्रास तथा म की आवृति

तीन बार होने से वृत्यनुप्रास, जनु से उत्प्रेक्षालंकार स्पष्ट है अतएव शब्द+अर्थ संसृष्ट है ॥

पुनः—कारण से कारज कठिन, होय दोष नहिं मोर।
कुलिश अस्थि ते उपल ते, लोह कराल कठोर ॥

इसमें क की आवृत्ति तीन बार से वृत्यनुप्रास, पुनः क की आवृत्ति दो बार होने से छेकानुप्रास तथा अर्थान्तरन्यास स्पष्ट है, अतः शब्द+अर्थ संसृष्टि है।

(अर्थ + अर्थ)

लसत मंजु मुनि मंडली, मध्य सीय रघुचन्द।
ज्ञान सभा जनु तनु धरे, भक्ति सच्चिदानन्द ॥

इसमें जनु से उत्प्रेक्षा तथा मुनि मंडली, सीय, रघुचन्द कह कर पुनः क्रम से ज्ञान सभा, भक्ति और सच्चिदानन्द कह कर क्रमालंकार भी सिद्ध किया है। अतएव अर्थ+अर्थ संसृष्टि है।

२ संकर

दूध और पानी की भांति मिले हुए (पृथक न होने योग्य) अलंकारों के सम्मिश्रण को संकर कहते हैं। इसके चार भेद होते हैं। १ अङ्गांगी भाव (२) सम प्राधान्य (३) संदेह (४) एक पद संकर।

[१] अंगांगी भाव

जहां बीज तथा वृक्ष के न्याय से मिले हुए अलंकार हों अर्थात् एक के बिना दूसरा सिद्ध न हो। जैसे बिना वृक्ष के बीज और बिना बीज के वृक्ष नहीं होता, ऐसे मिश्रण को अङ्गांगी भाव संकर कहते हैं। यथाः—

साधु चरित शुभ सरिस कपासू।
निरस बिशद गुणमय फल जासू॥
जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा।
वंदनीय जेहि जग जस पावा॥

इसमें साधु चरित और कपास सरिस है-यह उपमा है। उसके फल निरस, विशद और गुणमय हैं। इन तीनों के श्लिष्ट अर्थ दोनों पर घटित होते हैं। तब उपमा सिद्ध होती है छिद्र शब्द भी श्लिष्ट है इससे इसमें श्लेषालंकार उपमा है॥

२ समप्राधान्य

दिन और सूर्य की तरह साथ ही प्रकटें और साथ ही भासित हों वह समप्राधान्य संकर है। यथाः—

सेये सीताराम नहिं, भजे न शंकर गौरि।
जनम गँवायो वादि ही, परत पराई पौरि॥

इसमें स, र तथा प के अनुप्रास और दृष्टान्त एक साथ ही भासित होते हैं।

३ संदेह

जहां पर दो वा अधिक अलंकार हों पर निश्चय न लख पड़े कि किसका गृहण करें वा किसका त्याग करें। यथा:—

सुनि मृदु वचन मनोहर पिय के।
लोचन नलिन भरे जल सिय के॥

इसमें निश्चय नहीं होता कि रूपक मानें व उपमा मानें अतएव संदेह है।

४ एक पद संकर

नृसिंहाकार न्याय से (एक ही देह में मनुष्य तथा सिंह की आकृति) जहां एक ही पदमें शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों हों वह एक पद संकर कहलाता है। यथा:—

सोइ जल अनिल अनल संघाता।
होय जलद जग जीवनदाता॥

यहां जलद जग, जीवनदाता में अनुप्रास भी है तथा जीवन में श्लेष है इससे अर्थालंकार भी है। क्योंकि जीवन का अर्थ पानी तथा प्राण दोनों होते हैं। अर्थात् इसके एक ही चरण 'होय जलद जग जीवनदाता' में शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों का सम्मिश्रण है अतः यह एक पद संकर कहलायेगा।

॥ इति द्वितीय खण्ड समाप्तम् ॥

॥ श्रीगणेशायनमो नमः ॥

॥ अथ ॥

काव्याङ्ग त्रिवेणी

तृतीय खण्ड—नवरस

सुन कवित्त को चित्त मधि, सुधि न रहे कछु और।
होय मगन वहि मोद में, सो 'रस' कह 'शिरमौर'' ॥

काव्य को पढ़कर अथवा सुनकर मन जो एक विशेष प्रकार के अलौकिक आनन्द का अनुभव करता है जिसके समक्ष किसी प्रकार के अन्य विचार मनोगत भावों तथा आनन्द पर बाधक रूप से आक्रमण नहीं कर सकते, अथवा काव्य के सुनते या पढ़ते ही जो अत्यन्त प्रबल मनोभावना उठती है जो अन्य विचारों को दबाने में समर्थ होती है। उस मनोभावना जनित आनन्द धार का नाम रस है।

स्मरण रखना चाहिए इस प्रकार के आनन्द देने में जो असमर्थ है वह काव्य नीरस है निर्जीव है।

हिन्दी साहित्य में प्राचीन कवियों ने केवल नवरस माने हैं। यथा:—

(१) शृङ्गार (२) हास्य (३) करुण (४) रौद्र (५) वीर (६) भयानक (७) वीभत्स (८) अद्‌भुत और (९) शान्त। परन्तु आधुनिक काल में एक नवीन रस और माना जाता है जिसको वात्सल्य रस कहते हैं। इस प्रकार से कुल रस १० हुए।

१—शृंगार रस

स्त्रियों के नख शिख तथा रति रंग का वर्णन जिस काव्य में होता है। उसमें शृङ्गार रस होता है। यह रसों का राजा कहा जाता है इसी से इसे प्रथम लिखते हैं।

यथा:—सिय शोभा नहिं जाय बखानी।
जगदम्बिका रूप गुण खानी॥
सोह नवल तनु सुंदर सारी।
जगत जननि अतुलित छवि भारी॥
भूषण सकल सुदेश सुहाये।
अंग अंग रचि सखिन बनाये॥ (रामायण)

पुन:—नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकाश यह काल।
अली कली ही ते फँस्यो, आगे कौन हवाल॥
(बिहारी)

अनियारे दीरघ दगन, किती न युवति समान।
वह चितवन कुछ और है, जेहि बस होत सुजान॥
(बिहारी)

बिहारी सतसई, रसराज मतिराम कृत शृङ्गार रस पूर्ण ग्रन्थ हैं।

दो०-अमी हलाहल मद भरे, स्वेत श्याम रतनार।
मरत जियत झुकि झुकि परत, जेहि चितवत इकबार ॥
(बिहारी)

पुनः—अभिनव यौवन, जोतिसों, जगमग होत विलास।
तिय के तनु पानिप बढ़े -पिय के नैननि प्यास ॥
(मतिराम)

शृंगार दो प्रकार का होता है (१) संयोग (२) वियोग। लक्षण स्पष्ट है। शृंगार रस (उद्दीपक) चंद, कमल, चंदन-अगर, ऋतु, वन-बाग-वहार तथा श्वेत वस्तुयें होती हैं।

२—हास्य रस

जब काव्य को पढ़कर हँसी का अनुभव हो। यथाः—

हँसि हँसि भजैं देख दूलह दिगम्बर को,
पाहुनी जे आवत हिमांचल उछाह में।
कहै पद्माकर सो काहू से कहै को काह,
जोई जहां देखे सो हँसोई तहां राह में ॥
मगन महेश ठाढ़े मग्न है हँसोई तहँ,
और सब हँसै तहँ हास के उमाह में।
शिर पर गंगा हँसे, भुजन भुजंगा हँसैं,
हास ही को दंगा भयो नंगा के विवाह में ॥

पुनः—बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू ।
भूप किशोर देख किन लेहू ॥
पुनि आउब यिरियां यहि काली ।
अस कहि मन विहँसी यक आली ॥

वास्तव में उपरोक्त चौपाइयों में वर्णित हास्यरस श्लाघ्य है यह जितना ही गूढ़ हो उतना ही श्रेष्ठ माना जाता है। अश्लील, पर्दाफाश हास्य अवांछनीय तथा निंद्य है।

३—करुण रस

जिस काव्य को पढ़कर या श्रवण कर आँसू भर आवें तथा करुणा का भाव हृदय में पैदा हो उसमें करुण रस होता है। यथाः—

१-बहुरि बच्छ कहि लाल कहि, रघुबर राघव तात।
कबहिं बुलाय लगाय उर, हरषि निरखि हौं गात ॥
२-हा रघुनंदन! प्राण पिरीते।
तुम बिन जियत बहुत दिन बीते ॥
हा जानकी! लखन! हा रघुबर।
हा! पितु हित चित चातक जलधर ॥

रामायण में राजा दशरथ विलाप, कौशिल्या जी का शोक सीता हरण के समय जानकी क्रन्दन, तारा विलाप तथा मंदोदरी विलाप करुण रस पूर्ण हैं।

४-रौद्र रस

जिस काव्य में वीरों के युद्ध का वर्णन हो जिनके शरीर अस्त्र शस्त्रों से क्षत विक्षत हों तथा शरीर से रक्त धार यत्र तत्र बहे। वह काव्य रौद्ररस संयुक्त होता है। यथा:—

(कुंभकर्ण युद्ध) शोणित स्रवत देह तनु कारे।
जिमि कज्जल गिरि गेरु पनारे॥
काटहि चरण उर सिर भुज दंडा।
बहुतक वीर होंय शत खंडा॥
घूमि घूमि घायल महि परहीं।
उठहि सँभार सुभट फिर लरहीं॥
रुंड प्रचंड मुंड बिन धावहिं।
धरु धरु मारु मारु गोहरावहिं॥

५—वीर रस

जिस काव्य में किसी की वीरता का वर्णन हो वह काव्य वीर रस का माना जाता है। यह वीरता ४ प्रकार की होती है। (१) दानवीरता (२) सत्यवीरता (३) खड्गवीरता तथा, (४) दया वीरता, सत्यवीरता को धर्मवीरता भी कहते हैं।

१-दानवीरता

जिसमें किसी के अत्यन्त दान वीरता का वर्णन हो। यथा:—

संपति सुमेर की कुबेर की जो पावै ताहि,
तुरत लुटावत बिलम्ब उर धारे ना।

कहै पद्माकर सुहेम हय हाथिन के,
हलके हजारन के वितर विचारै ना॥
गंज गज बकस महीप रघुनाथ राव,
याही गज धोखे कहूं काहू देय डारे ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोय रही,
गिरि ते गरे ते निज गोद ते उतारे ना॥

पुनः—आये जुर जांचिबे को जाचक जहांलों एते,
एहो कवि रघुनाथ आजु तीनों रथ में।
एते मान दान तिन्हें भूप दशरथ दीन्हें,
देत न दिखाई कहूँ कोऊ गौज घर में॥
बसन के नाते पास बास कौशिला के एक,
भूषन के नाते नथ नाक छला कर में।
घोरे हाथी चित्रन के रहे चित्रसारी मांहि,
दाम के जनम रहे दाम दफतर में॥

२ दयावीर–उदाहरण

जाहि पास जात सो तो राखि ना सकत यातें,
तेरे पास अचल सुप्रीति नाधियतु है।
भूषन भनत शिवराज तव किन्ति सम,
और की न किन्ति कहिबो को कांधियतु है॥
इन्द्र को अनुज तैं उपेन्द्र अवतार यातें,
तेरो बाहुबल लै सलाह साधियतु है।

पायतर आय नित निडर बसाइबे को,
कोट बांधियत मानो पाग बांधियतु है ॥

३ धर्मवीर—उदाहरण

बेद राखे विदित पुरान परसिद्ध राखे,
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
कांधे में जनेऊ राखो माला राखी गर में ॥
मीड़ राखे नृपति मरोड़ि राखे पातसाह,
वैरी पीस राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेग बल सिवराज,
देव राख्यो देवथल धर्म राखो घर में ॥
पुनः—चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत ब्यौहार।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द को, टरै न सत्य विचार ॥
बेच देह दारा सुवन, होय दास हू मंद।
मन क्रमसों बच पालिहै, अभिलाषी हरिचंद ॥

४ खंग बीरता

सुनिये धरवीर गंभीर प्रणवीर प्रण,
भाषै यों भीम सभा मध्य उर निशंक कर।
कीन्हों अपमान, अभिमान मान शान सब,
आन में भुलाऊं सुत पांडु अकलंक कर ॥

करके गदा प्रहार दाहिनी भुजा उखारि,
रावण संहार कर फेंकूं भुज पंक पर।
कोटि वर्ष नर्क परूं उर न विदीर्ण करूं,
रक्त पी सुलाऊं न जो मृत्यु-परयंक पर॥

पुनः-ऐरे दशभाल! क्यों बजावत है गाल व्यर्थ,
होती राम आयसु तो खेल कर डारतो।
एक ही चपेटा कुंभकर्ण मेघनाद मार,
पैरन सों रौंद यह वाटिका उजारतो॥
गेंद सो उठाय तोरी लंका को डुबाय सिंधु,
पूंछ सों लपेट सारी सेना को संहारतो।
जातौं लै मंदोदरी समेत बरजोरी सीय,
जीते जी ही तेरो तो कलेवा कर डारतो॥
(पृष्ठ २६, २७ में परुषा वृत्ति का उदाहरण देखो)

६—भयानक रस

जब काव्य को पढ़ या सुनकर डर उत्पन्न हो। यथाः—
नाक कान काटे तेहि जानी। फिरा क्रोध करि मान गलानी॥
सहज भीम पुनि बिन श्रुति नासा। देखत कपि दल उपजी त्रासा॥
उग्र बिलोकन प्रभुहिं बिलोका। मानहुं गूसन चहत त्रैलोका॥
दो०-करि चिकार अति घोर रव, धावा बदन पसार।
गगन सकल सुर त्रास अति, हाहाकार पुकार॥

(इसमें कुंभकर्ण की वीरता को देखकर तथा उसके उग्र रूप को देख देवताओं में उत्पन्न भय का वर्णन है। भयानक रूप को देखकर, शेर इत्यादि को देखकर भय उत्पन्न होता है। ऐसे वर्णनों में भयानक रस होगा।

७—वीभत्स

जिस काव्य को पढ़कर घृणा का भाव पैदा हो। यथा:—

उदा०—वीर परे जनु तीर तरु, मज्जा बह जनु फेन।
काक कंक लै भुजा उड़ाहीं। इकते एक छीन धरि खांहीं॥
खैंचहिं अति गृद्ध तट भये। ... ... ॥

पुनः—कोउ इक सुलगत चिता कोऊ एक जात बुझाई।
कोउ इक जात लगाय कोऊ की राख बहाई॥
कहुं शृगाल लै हाड़ ताहि चट चाट चचोरत।
कहूँ गृद्ध शव बैठ समुद आंखें नस खैंचत॥ इत्यादि

(सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में श्मशान वर्णन वीभत्स रसपूर्ण है अधिक उदाहरण के लिये देखिये)

पुनः—भूषन भनत चैन उपजे शिवा के चित्त,
चौसठ नचाई जबै रेवा के किनारे में।
आंतन की तांत बाजी खाल की मृदंग बाजी,
खोपरी की ताल पसुपाल के अखारे में॥

८—अद्‌भुत रस

जिस काव्य में आश्चर्य जनक वर्णन हो उसमें अद्‌भुत रस होता है। यथा—चौ०—

एकबार जननी अन्हवाये। कर शृंगार पलना पौढ़ाये ॥
निज कुल इष्ट देव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह पकवाना ॥
करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा। आपु गई जहँ पाक बनावा ॥
बहुरि मातु तंहवा चलि आई। भोजन करत दीख रघुराई ॥
गई जननी शिशु पहं भय भीता। देखा बाल तहां पुनि सूता ॥
बहुरि आय देखा सुत सोई। हृदय कंप मन धीर न होई ॥
इहां वहां दुइ बालक देखा। मति भ्रम मोर कि आन विशेखा ॥
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन मधुर मुसकानी ॥

दो०—दिखरावा मातहिं निज, अद्‌भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति राजहीं, कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥

अगनित रवि शशि शिव चतुरानन।
बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन ॥
काल कर्म गुण ज्ञान स्वभाऊ।
सो देखा जो सुना न काऊ ॥ इत्यादि ॥

बाल रूप श्रीराम जी का ऐसा दृश्य दिखलाना अद्‌भुत रसोत्पादक है। इसी प्रकार सती जी को तथा उत्तर में काक०

भुशुंड को भी इसी प्रकार का दृश्य दिखलाई पड़ा है। इनमें भी अद्भुत रस है।

६—शान्त रस

जिस काव्य में भगवद्भक्ति का वर्णन होता है उसमें शान्त रस होता है। यथा—

प्रेम की पुकार सुन गजेन्द्र को उबार्‌यो जाय,
श्रद्धा लख पापी अजामील विप्र तार्‌यो है।
जूठे बेर खाय मुक्ति दीन्ह्यो तुम भिल्लनि को,
कीन्ह्यो भक्त श्रेष्ठ विदुर शाक जो सँवार्‌यो है॥
भक्तो वश पारथ के सारथि बने हो नाथ,
कृष्णा की बढ़ाय चीर कष्ट सब टार्‌यो है।
प्रेम भक्ति शाक बेर नाहिं पै जो तार्‌यो मोंहि,
जानों सच दीनबन्धु विरद जो पसार्‌यो है॥

पुनः—पार तरै सनसार अपार, चलो हरि नाम—नदी तट में।
हो न विषै ममता मद कंटक अंक कलंक यशी पट में॥
त्याग प्रपंच करार सुनेम लिये गुन प्रेम के पनघट में।
जन्म निरर्थक सार्थक होय, भरे जल भक्ति, हृदै घट में॥

पुनः—नीलाम्बुज-श्यामल कोमलाङ्ग,
सीता समारोपित वाम भागम्।

पाणौ महा शायक चारु चापं,
नमामि रामं रघुवंश नाथम् ॥

पुनः—जय जय जय गिरिराज किशोरी।
जय महेश मुखचन्द्र चकोरी ॥
जय गजबदन षडानन माता।
विश्व जननि दामिनि द्युत गाता ॥
नहिं तव आदि मध्य अवसाना।
अमित प्रभाव वेद नहिं जाना ॥ इत्यादि ॥

पुनः—कामहिं नारि पियार जिमि, लोभहिं जिमि प्रिय दाम।
जिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम ॥

प्रार्थनायें, वंदनायें इत्यादि शान्त रस युक्त होती हैं।

१०—वात्सल्य रस

जिस काव्य में संतान प्रेम का वर्णन हो उस काव्य में वात्सल्य रस होता है। यथा:—

माता भरत गोद बैठारे। आंसु पोंछि मृदु वचन उचारे ॥
अजहुं वत्स बलि धीरज धरहू। कुसमय समुझि शोक परिहरहू ॥
विलपहिं विकल भरत दोऊ भाई। कौशिल्या लिये हृदय लगाई ॥
असकहि मातु भरत हिय लाये। स्तन पय स्त्रवहिं नयन जलछाये।
पुनः-दीन्ह अशीष लाइउर लीन्हे। भूषण वसन निछावरि कीन्हे ॥
बार बार मुख चुम्बति माता। नयन नेह जल पुलकित गाता ॥

गोद राखि पुनि हृदय लगाई। स्रवत प्रेम रस पयद सुहाई॥
प्रेम प्रमोद न कछु कहि जाई। रंक धनद पदवी जनु पाई॥
सुन्दर सादर बदन निहारी। बोली मधुर वचन महतारी॥
कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद मंगलकारी॥
तात जाँउ बलि वेगि अन्हाऊ। जो मनभाव मधुर कछु खाहू॥
पितु समीप तब जायहु भैया। भई बड़वार जाय बलि मैया॥

नोटः—

रसों की परस्पर अनुकूलता और प्रतिकूलता भी होती है वीर और शृङ्गार का, शृङ्गार और हास्य का, वीर और अद्-भुत का, वीर और रौद्र का, तथा शृङ्गार और अद्भुत का विरोध नहीं है और एक का दूसरे के साथ इस प्रकार विरोध हैः—

१ शृंगार का करुण, वीभत्स, रौद्र, वीर और भयानक से विरोध है।

२ करुण का हास्य और शृङ्गार के साथ विरोध है।

३ हास्य का भयानक और करुण से विरोध है।

४ रौद्र का हास्य, शृङ्गार और भयानक से विरोध है।

५ वीर का भयानक और शान्त से विरोध है।

६ भयानक का शृङ्गार, वीर, रौद्र, हास्य और शान्त से विरोध है।

७ वीभत्स का शान्त और शृङ्गार से विरोध है.

८ शान्त का वीर, शृङ्गार, रौद्र, हास्य और भयानक से विरोध है। (काव्य कल्पद्रुम)

भाव ।

रस पैदा होने का हेतु भाव ही होते हैं।

१—स्थायी भाव—प्रत्येक रसमें जो भाव स्थिर रूप से रहे उसे स्थायी भाव कहते हैं। स्थायी रहने से यही भाव मूलरूप से रहता है और इसे कोई भी अन्यभाव चाहे विरोधी हो चाहे अविरोधी, दबा नहीं सकते। इसप्रकार प्रत्येक रसमें एक स्थायी भाव होता है। १ शृङ्गार, २ हास्य, ३ करुण, ४ रौद्र, ५ वीर, ६ भयानक, ७ वीभत्स, ८ अद्भुत, ९ शान्त में क्रमशः १ रति (प्रेम), २ हास (हंसी), ३ शोक, ४ क्रोध, ५ उत्साह, ६ भय, ७ जुगुप्सा (ग्लानि तथा घृणा), ८ विस्मय और ९ शम नौ स्थायी भाव हैं।

२-संचारी या व्यभिचारी भाव—स्थायी भाव के साथ अन्य जो सहायक भाव प्रकट होते हैं जो स्थिर नहीं होते किन्तु उत्पन्न होकर बार बार लुप्त होजाते हैं और सब रसों में कम या अधिक संख्या में संचार करते हैं वे संचारी या व्यभिचारी भाव कहलाते हैं संचारी भाव ३३ होते हैं:—

१ निर्वेद (शोक, आंसू, गहरी सांस आदि चेष्टायें), २ दीनता (दुख या विरह से) ३ शंका, ४ असूया (किसी के उत्कर्ष से जलन न होना),५ मद (धन रूप, विद्या तथा मादक वस्तु का असर), ६ श्रम (थकावट) ७ आलस्य (श्रम, गर्भ, व्याधि जनित थकावट), ८ ग्लानि (दुख या रोग जनित शिथिलता), ९ चिन्ता, १० मोह, ११ स्मृति (पूर्व अनुभव ज्ञान),

१२ धृति (धैर्य), १३ व्रीड़ा (हृदय में संकोच), १४ चपलता, १५ हर्ष, १६ आवेग (घबड़ाहट), १७ जड़ता (चेष्टा रहित होना) १८ गर्व, १९ विषाद (उत्साह भंग होना) २० औत्सुक्य (उत्कट इच्छा), २१ निद्रा २२ अपस्मार (मृगी रोग या उसकी दशा होना), २३ स्वप्न, २४ विबोध (निद्रा या अज्ञानके पश्चात चेतनता लाभ), २५ अमर्ष (क्रोध न सहना) २६ उग्रता, २७ मति (उत्तम विचार), २८ व्याधि, २९ उन्माद (पागलपन), ३० मरण ३१ त्रास, ३२ अवहित्थ (लज्जा आदि भावों का छिपाना) ३३ वितर्क (संशय या संदेह होना)

विभाव—स्थायी भाव के कारण को विभाव कहते हैं इस के दो भेद हैं:—

(१) आलम्बन—जिसका आलम्बन (आश्रय) लेकर हृदय के भाव उत्पन्न हों। जैसे शृङ्गार में नायक नायिका, जिसे देख कर प्रेम भाव उत्पन्न हो।

(२) उद्दीपन—जो भावों को उत्कटता से उद्दीपित करे या बढ़ावे। जैसे तीर्थ यात्रा या सत्संगति आदि से वैराग्यका बढ़ना

अनुभाव।

अनुभाव शब्द का अर्थ है अनु अर्थात् पीछे के भाव। अर्थात् उत्पन्न हुये मनोकारों या मनोविकारों को प्रकाशित करने वाली चेष्टायें ही अनुभाव हैं। जैसे लाल आंखें होना, मुँह का रंग उड़ना, पसीना आदि। प्रत्येक रस में स्थायी भाव, संचारी भाव, विभाव तथा अनुभाव होते हैं वे क्रमशः इस प्रकार जानना।

रस	स्थायीभाव	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	संचारी भाव
१ शृङ्गार	रति (प्रेम)	नायक तथा नायिका	सुन्दर वस्तु, वन ऋतु, चंद्र आदि	प्रसन्नता, हावभाव शृङ्गार आदि	उन्मादादि प्रायः
२ हास्य	हास	विदूषक पात्र	विचित्ररूप, चेष्टा	हँसना आदि	हर्ष, चपलता
३ करुण	शोक	इष्ट हानि, मरण	दाह कर्म, गुण आदिका स्मरण	विलाप, रुदन आदि	मोह, विषाद, ग्लानि आदि
४ रौद्र	क्रोध	शत्रु	शत्रु चेष्टा	लाल आंखें, टेढ़ी भौंह आदि	गर्व, अमर्ष
५ वीर	उत्साह	शत्रु वैभव, याचक, तीर्थ	रणभेरी, दीनदुख ज्ञान, उत्साह	बांहफड़कना, आक्रमण, दुख दूर करना	गर्व, उग्रता, धृति
६ भयानक	भय	भयङ्कर दृश्य	भयजनक कथा	कम्प, रोमांच आदि	त्रास, दैन्य, मोह मूर्छा
७ बीभत्स	जुगुप्सा	श्मशान, मांस, रुधिर आदि	दुर्गन्ध आदि	नाक भौं सिकोड़ना आदि	मोह, मूर्छा, व्याधि
८ अद्भुत	विस्मय	आश्चर्यजनक वस्तु	विचित्रता	इक टक देखना, विकलता	वितर्क, मोह, जड़ता
९ शान्त	वैराग्य	वैराग्यजनक वस्तु	सत्संग, तीर्थ यात्रादि	रोमांच, प्रेमाश्रु आदि	धृति, मति, हर्ष

शुद्ध-पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८	१६	नरेन्द्र	सार
२१	८	सीप	सीय
२६	१६	समन्त्य	समान्त्य
२७	१८	चँद	चंद
२६	६	हारि	हरि
३२	८	सो	सा
३७	२	उपमान	उपमा न
३७	५	सँभारे	संवारे
३६	१४	बरवा	चौपई
४३	१	डाड़ी	डाढ़ी
४४	१	यंत्रका	यंत्रिका
४६	१	तपमामा	तपमाला
५१	४	हर	हरि
५८	१५	कासीसैं	कसीसैं
६०	४	पर वारि	परवारि
६०	८	डीह	दीह
६१	६,११	अर्थान्तरन्पास	अर्थान्तरन्यास
६१	१८	विरोधभास	विरोधाभास
७८	१६	खंग	खड्ग
८०	६	अति	आंत

समाप्त

काव्याङ्ग त्रिवेणी

लेखकः—
सिद्धगोपाल मिश्र
विशारद 'सुधाकर'